दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० ११

ऐसी खेलत होरी...!

(पंडित दौलतरामजी)

मेरौ मन ऐसी खेलत होरी!
मन मिरदंग साज करि त्यारी, तनको तमूरा बनोरी।
सुमति सरंग सुरंगी बजाई, ताल दोऊ कर जोरी॥
राग पाँचों पद कोरी।मेरौ मन० ॥१॥
समकित रूप नीर भरि झारी, करुना केशर घोरी।
ज्ञानमयी लेकर पिचकारी, दोऊ कर मांहि सम्होरी॥
इंद्री पाँचों सखि बोरी।मेरौ मन० ॥२॥
चतुरदान कौ है गुलाल सो, भरि भरि मूठ चलोरी।
तप मेवा की भरि निज झोरी, यश को अबीर उड़ोरी॥
रंग जिनधाम मचोरी।मेरौ मन० ॥३॥
'दौलत' बाल खेले अस होरी, भव-भव दुःख टलोरी।
शरना ले इक श्रीजिनको री, जग में लाज हो तोरी॥
मिलै फगुआ शिव होरी।मेरौ मन० ॥४॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अप्रैल १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२९९) एक अंक २५ पैसा [फाल्गुन : २४९६

आत्मधर्म के ग्राहकों को

—: आवश्यक सूचना :—

(१) आत्मधर्म का नया वर्ष आगामी वैशाख महीने से अंक नं० ३०१ के साथ प्रारंभ हो रहा है।

(२) ग्राहकों से निवेदन है कि अपना आगामी वर्ष (संवत् २०२६-२७) का चंदा ३/- तीन रुपये मनी आर्डर द्वारा भिजवा देवें, ताकि अंक यथासमय आपको मिलता रहें

(३) जिन नगरों में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल हैं, उनसे निवेदन है कि अपने नगर के ग्राहकों का चंदा एकसाथ लिस्ट बनाकर मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट द्वारा भिजवा देवें।

(४) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती। आपकी ओर से सूचना मिलने पर ही आत्मधर्म वी.पी. द्वारा भेजा जायेगा।

(५) चंदा भेजते समय अपना ग्राहक नंबर एवं पूरा नाम और पता जिला-तहसील सहित स्पष्ट अक्षरों में अवश्य लिखें। पता स्पष्ट न होने से आत्मधर्म मिलने में विलंब होता है।

चंदा निम्न पते पर भेजें:—

मैनेजर

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (भावनगर—सौराष्ट्र)

—सूचना—

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड
टोडरमल स्मारक-भवन जयपुर का
परीक्षा परिणाम संबंधित संस्थाओं को भेजा जा
चुका है। जिनको प्राप्त न हुआ हो, कार्यालय को लिखें।

— मंत्री

शिरपुर में विराजमान पार्श्वनाथ प्रभु की वीतराग प्रतिमा

अंतरिक्ष प्रभु आप ही सच्चे, देख रहे निज आतमराम,
राग अंश का नहिं आलम्बन, स्वयंज्योति हो आनंदधाम।
रत्नत्रय आभूषण सच्चा, जड़ आभूषण का नहिं काम,
तीन लोक के मुकुट स्वयं हो, क्या है स्वर्ण-मुकुट का काम?

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

अप्रैल : १९७० ☆ फाल्गुन, वीर नि०सं० २४९६, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : ११

स्वयंसिद्ध विश्व का स्वरूप

- अरिहंत भगवान के देखे हुए इस विश्व में अनंत चेतन और जड़ पदार्थ हैं; उनमें से कोई पदार्थ अपनी स्वजाति को नहीं छोड़ता।
- चेतन सदा चेतनरूप और जड़ सदा जड़रूप रहकर अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव में वर्तता है।
- नित्य ऐसे गुण तथा अनित्य ऐसी पर्यारूप वस्तु स्वयं ही है; वह गुणरूप से नित्य रहकर पर्यायरूप से परिणमित होती है।
- भिन्न वस्तुओं के गुण-पर्याय एक-दूसरे में कभी मिलते नहीं हैं अथवा एक-दूसरे को कभी करते नहीं हैं।
- सर्वज्ञदेव का देखा हुआ ऐसा वस्तुस्वरूप प्रकाशित करके वीतरागी संतों ने जगत को भेदज्ञान कराया है।

[उपरोक्त विषय का लेख इसी अंक में पढ़िये।]

सर्वज्ञ की देखी हुई सर्व पदार्थों की सत्ता

वस्तु की स्वाधीन सत्ता को प्रकाशित करनेवाला खुला पत्र

बाहरी 'सत्ता' के लिये लोग कितने बेचैन रहते हैं ?—किंतु जिस स्वाधीन 'सत्ता' रूप स्वयं सदाकाल है, उस स्व-सत्ता को यदि पहिचान तो सम्यग्ज्ञान के द्वारा अपूर्व शांति का वेदन हो। हे जीव! तेरी सच्ची सत्ता वीतरागी संत तुझे समझाते हैं। श्रीगुरु कहते हैं कि यह तो वीतरागी संतों के द्वारा लिखा हुआ पत्र है—कि जो वस्तु के सत्स्वरूप को प्रसिद्ध करता है।

[पंचास्तिकाय, गाथा ८ के प्रवचन से]

इस जगत में जीव-पुद्गल इत्यादि पाँच अस्तिकाय तथा छट्ठा काल द्रव्य, ऐसे छह प्रकार के द्रव्य सत् हैं, अस्तिरूप हैं; सर्वज्ञदेव ने उनका स्वरूप प्रत्यक्ष देखा है; तथा संतों ने वीतरागमार्ग में उन्हें प्रसिद्ध किया है।

जगत में छह द्रव्य सत् हैं, तथा उनको जाननेवाला सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। छह द्रव्यों के अस्तित्व को जो नहीं मानता, वह आत्मा के सर्वज्ञस्वभाव को ही नहीं जानता; उसीप्रकार आत्मा के सर्वज्ञस्वभाव को जो स्वीकार नहीं करता, वह छह द्रव्यों को भी यथार्थ नहीं जानता। सर्वज्ञ के बिना छह द्रव्यों के अतीन्द्रिय स्वभाव को कौन पहिचानेगा ?

अब, जगत में जो अस्तिरूप द्रव्य हैं तथा सर्वज्ञदेव ने जिनको देखा है, उनका स्वरूप कैसा है ? उनका सत्पना कैसा है ? वह यहाँ पंचास्तिकाय की आठवीं गाथा में कहते हैं। इसमें वस्तु के सत्स्वरूप की अलौकिक सूक्ष्म बात है।

जगत में आत्मा अथवा जड़, जो भी वस्तु सत् विद्यमान है, वह मात्र नित्य अथवा मात्र अनित्य नहीं है।

वस्तु सर्वथा नित्य हो तो वह कभी बदल ही नहीं सकती, इसलिये उसमें मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व हो ही नहीं सकता, दुःख दूर होकर सुख नहीं हो सकता; कर्म की मिथ्यात्वदशा दूर होकर अन्य दशा नहीं हो सकती। सत् वस्तु नित्य स्थित रहकर परिवर्तित हो, तभी यह सब संभव है। इसलिये कहते हैं कि सत् अर्थात् विद्यमान वस्तु सर्वथा नित्य या सर्वथा क्षणिक नहीं है।

यदि वस्तु सर्वथा अनित्य हो तो, वह स्थायी नहीं रह सकती; इसलिय 'कल था, वही मैं आज हूँ; पूर्वभव में था, वही मैं इस भव में हूँ'—ऐसा प्रत्यभिज्ञान अर्थात् नित्यता का ज्ञान कहाँ से हो सकता है ? वस्तु के नित्यता के कारण ही ऐसा ज्ञान होता है। तथा ऐसे ज्ञानवाले जीव वर्तमान में भी दिखलाई देते हैं।

यदि वस्तु सर्वथा नित्य हो तो एक अवस्था बदलकर दूसरी अवस्था कहाँ से होगी ? परिवर्तन हुए बिना मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व कहाँ से होगा ? श्रुतज्ञान दूर होकर केवलज्ञान कहाँ से होगा ? वस्तु में ही अनित्यता के कारण अवस्था परिवर्तित होती है।

इसप्रकार वस्तु नित्य-अनित्यरूप है। नित्य-अनित्य ऐसे स्वरूप से ही वस्तु का अस्तित्व है। नित्यता होने से ध्रुवपना है, तथा अनित्यता होने से उसका उत्पाद-व्यय है। इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे तीन स्वरूप से वस्तु का अस्तित्व है; इसी को सत्ता कही जाती है। प्रत्येक वस्तु स्वाधीनतापूर्वक ऐसी सत्तास्वरूप है।

जगत के जितने भी सत् पदार्थ हैं, वे सब स्वयं ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप हैं। उनकी पर्यायों का उत्पाद स्वयं से ही है, मिथ्यात्वादि पर्यायों का व्यय भी स्वयं से है, अन्य से नहीं; उनका नित्य स्थायीपना—ध्रुवस्वरूप भी स्वयं से ही है अन्य से नहीं।

यह मात्र जीव की बात नहीं किंतु जगत के सभी पदार्थों की बात है। प्रत्येक पदार्थ का सत्पना अर्थात् अस्तित्व अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे तीन स्वरूप से है। एक के उत्पाद-व्यय-ध्रुव में दूसरे की सत्ता नहीं, इसलिये दूसरा उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव कराये, ऐसा सत् नहीं है।

वस्तु अपने स्वरूप से उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, उसीप्रकार उसकी सत्ता भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे तीन लक्षण स्वरूप जानना। वस्तु भाववान है, सत्ता उसका भाव है, उनमें कथंचित् एकता है, अर्थात् जैसी वस्तु है, वैसी ही उसकी सत्ता है।

जिसप्रकार 'सत्ता' एक गुण है तथा वस्तु गुणवान है; उसीप्रकार ज्ञान एक गुण है-भाव है, तथा आत्मा गुणवान है-भाववान है। जिसप्रकार आत्मवस्तु स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, उसीप्रकार उसका ज्ञानगुण अपने से ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है। ज्ञानरूप नित्य अवस्थित रहकर वह स्वयं एक अवस्था में से दूसरी अवस्थारूप बदलती है, अर्थात् उत्पाद-व्यय को करती है।

अज्ञान दूर होकर सम्यग्ज्ञान हुआ तथा श्रुतज्ञान बदलकर केवलज्ञान हुआ, यह ज्ञान की अपनी सत्ता से ही हुआ है, किसी अन्य से कारण से नहीं हुआ। मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व हुआ, वह उत्पाद-व्यय जीव से हुआ है, उस समय कर्म में मिथ्यात्व-अवस्था का नाश होकर दूसरी (अकर्मरूप) अवस्था हुई, यह उत्पाद-व्यय पुद्गल के हैं, यह पुद्गल का सत् है; जीव की सत्ता में वह नहीं, इसलिये उसका कर्ता भी जीव नहीं। क्योंकि जिसके अस्तित्व में जो हो, वह उसी को करेगा।

अहा, जगत के सभी पदार्थ एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुवता ऐसे तीन स्वरूप से हैं। एक समय में तीनों को जानता है, वह तीन काल को जानता है। सत् कैसा है, उसकी जगत को खबर नहीं। भगवान की वाणी ने ऐसा सत् प्रसिद्ध किया, यह उनकी सर्वज्ञता की निशानी है।

शरीर की-वचन की-कर्म की—जितनी भी क्रियाएँ हैं, वे सभी पुद्गल के उत्पाद-व्यय-ध्रुव में हैं; इसलिये पुद्गल के अस्तित्व में होती हैं, जीव में नहीं; पुद्गल उत्पाद-व्ययरूप होकर उन क्रियाओं को करता है, जीव उन्हें नहीं करता। जीव का अस्तित्व अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव में है।

अहो, पदार्थ का ऐसा सत् स्वरूप, उसको जानने से सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि होती है, मिथ्यात्वबुद्धि दूर होकर वीतरागता होती है। सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि तथा वीतरागता, वह इस शास्त्र का तात्पर्य है। वस्तु के सत्स्वरूप को पहचाने बिना सम्यग्ज्ञान या वीतरागता उत्पन्न नहीं होती।

सत्वस्तु स्वयं ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, तो अन्य उसमें क्या करे? अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव से बाहर किसी वस्तु का अस्तित्व होता ही नहीं, इसलिये पर में वह क्या करे? अहो, वस्तु के अस्तित्व को जाने तो स्व-पर की सर्वथा भिन्नतारूप भेदज्ञान हो, अर्थात् सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि हो। ऐसे भेदज्ञान के द्वारा ही राग-द्वेष-मोह का नाश होकर वीतरागता होती है।

इस गाथा द्वारा संतों ने स्वाधीन सत्ता को प्रसिद्ध किया है।

उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप वस्तुस्वरूप के जो नियम हैं, वह किसी से भंग नहीं किये जा सकते। वस्तुस्वरूप की जो सत्ता, उसके अबाधित नियमों को कोई भंग नहीं कर सकता। जिसप्रकार जीव के अस्तित्व को बदलकर कोई अजीव नहीं बना सकता, उसीप्रकार जीव की

जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत्ता, उसमें दूसरे का हस्तक्षेप कार्यकारी नहीं हो सकता। सिद्ध हो या साधक हो, केवलज्ञानी हो या अज्ञानी हो, जीव हो या जड़ हो, उन प्रत्येक का उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप होना अपने से ही है, अपनी स्वयं की सत्ता से ही पदार्थ वैसे हैं। जगत में ऐसी कोई सत्-वस्तु नहीं कि जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवता से रहित हो। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप त्रिलक्षणवाली ही सत्-वस्तु है।

❀ सभी पदार्थ ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप 'सत्' हैं। (अर्थसमय)

❀ 'सत्' ऐसा कहते ही इसमें सर्व पदार्थ आ जाते हैं। (शब्दसमय)

❀ 'सत्' ऐसे ज्ञान में सर्व पदार्थों का ज्ञान समा जाता है। (ज्ञानसमय)

—इसप्रकार पदार्थों का स्वरूप, उनका वर्णन करनेवाली वाणी तथा उन्हें जाननेवाला ज्ञान—इसप्रकार अर्थसमय-शब्दसमय-ज्ञानसमय इन तीनों का संगम है। ऐसा स्वरूप जानने से सम्यग्ज्ञान तथा वीतरागता उत्पन्न होती है, यही धर्म है, यही मोक्षमार्ग है।

* * *

जगत में सर्वज्ञदेव के देखे हुए पदार्थों के सत्स्वरूप का यह कथन है। जीव-पुद्गल इत्यादि छह प्रकार की वस्तुएँ हैं; वे वस्तुएँ भूत-वर्तमान तथा भविष्य की अपनी-अपनी पर्यायोंरूप परिणमित होती हुई भी अनित्य नहीं हैं; क्योंकि अपने-अपने निश्चित स्वरूप का कभी त्याग नहीं करतीं, इसलिये नित्य हैं। इसप्रकार नित्य-अनित्यस्वरूप जो वस्तु है, उसी को उत्पाद-व्यय-ध्रुवपना है, तथा वह गुण-पर्यायवान है। ऐसे वस्तुस्वरूप का यह वर्णन है।

अनन्त द्रव्य जगत में एकसाथ रहते हुए भी अपने-अपने निश्चित स्वरूप का कोई भी त्याग नहीं करता, अर्थात् अनेक द्रव्य कभी एकरूप नहीं होते। चेतनामय जीव तथा अचेतन ऐसे जो कर्म, उनका व्यवहार से एकपना होने पर भी दोनों का स्वरूप भिन्न है। एक-दूसरे के स्वरूप को कोई ग्रहण नहीं करते, इसलिये दोनों भिन्न हैं; दोनों का अस्तित्व भिन्न है। जीव का उत्पाद-व्यय-ध्रुव जीव में है, तथा पुद्गल का उत्पाद-व्यय-ध्रुव पुद्गल में है। दोनों का अस्तित्व भिन्न अपने-अपने स्वरूप में ही है। एक का उत्पाद-व्यय-ध्रुव दूसरे के कारण से नहीं। ऐसा वस्तुस्वरूप पहिचाने तो पर से भिन्न अपनी स्व-सत्ता के सामने दृष्टि करने से भेदज्ञान तथा वीतरागता होती है। उसका नाम धर्म है।

वस्तु का अस्तित्व कहो या वस्तु की सत्ता कहो, गुण-पर्याय कहो, अथवा उत्पाद-

व्यय तथा ध्रुव कहो, यह सब भिन्न नहीं, किंतु एक ही हैं। वस्तु के 'सत्' में सबका समावेश हो जाता है।

जगत के सभी पदार्थ त्रिलक्षणयुक्त हैं अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे स्वभाव सहित वर्तते हैं। क्षण-क्षण नवीन पर्यायों का उत्पाद होना, वह वस्तु का स्वभाव ही है, तो अन्य कोई उस उत्पाद में क्या करेगा?

सामान्यरूप से 'सत्' ऐसा कहते ही जगत के सभी पदार्थ उसमें आ जाते हैं, क्योंकि सब सत् हैं। किंतु जब विशेष भेद करके उनको भिन्न-भिन्न स्वरूप से (अर्थात् अवांतर सत्तारूप से) देखा जाये तो प्रत्येक का स्वरूप भिन्न-भिन्न है, जीव का अस्तित्व सदा जीवरूप है, तथा पुद्गल का अस्तित्व सदा पुद्गलरूप है, इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूप-अस्तित्व से सत् है; तथा अन्यरूप से असत् है।

यदि वस्तु के संपूर्ण सत् को देखा जाये तो वह एक साथ उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे तीन लक्षणवाला 'त्रिलक्षण' है। किंतु उसमें एक उत्पाद को देखो तो वह उत्पाद लक्षणवाला ही है, उत्पादरूप जो भाव है, वह स्वयं व्यय या ध्रुवरूप नहीं है, इसलिये उस उत्पाद को त्रिलक्षणपना नहीं, उसे तो एक उत्पादलक्षणपना ही है। उसीप्रकार व्यय का लक्षण व्यय ही है, तथा ध्रुव का लक्षण ध्रुवता ही है, इसप्रकार वस्तु के उत्पन्न होनेवाले भाव का, विनाश होनेवाले भाव का तथा ध्रुव रहनेवाले भाव का, प्रत्येक का भिन्न-भिन्न एक-एक लक्षण है; तथा उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप संपूर्ण सत्वस्तु को त्रिलक्षणपना है।

स्वसत्ता तथा परसत्ता प्रत्येक के उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने-अपने स्वरूप-अस्तित्व में हैं। शरीर के—पुद्गल के या अन्य जीव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव मैंने किये, ऐसा जो मानता है, उसने वस्तु को सत् नहीं माना, वस्तु स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप है, ऐसा उसने नहीं जाना। जहाँ वस्तु स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, वहाँ उसका कोई अंश दूसरा दे, या अन्य के कारण हो—यह बात रहती ही नहीं। वस्तु को सत् तभी कहा जा सकता है कि जब स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप हो।

इस जीव में दया का शुभराग उत्पन्न हुआ, इसलिये सामनेवाले जीव में बचने की क्रिया हुई—ऐसा जिसने माना, उसको स्व-पर के स्वतंत्र अस्तित्व की खबर नहीं है। दूसरा जीव बचा, वह उसका उत्पाद है, तथा इस जीव को शुभराग हुआ, वह इसका उत्पाद है; अपनी-

अपनी उत्पादपर्याय में प्रत्येक का अस्तित्व है। ऐसे भिन्न अस्तित्व के अलावा राग से भी अपने ज्ञायकभाव का भिन्नपना धर्मी जीव जानता है। ज्ञायकस्वभावमात्र भाव मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करता है।

श्रुतज्ञान पर्याय का व्यय होकर केवलज्ञानपर्याय का उत्पाद हो तथा ज्ञानरूप से ध्रुव रहे—ऐसा ज्ञान का अपना सामर्थ्य है। वह उत्पाद किसी अन्य के कारण नहीं होता। सत् की अवस्था की उत्पत्ति पर के कारण मानता है, वह सत् का नाश (सत्तानाश-सत्यानाश) करता है। सत्ता स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त है, उसका एक अंश भी पर के कारण मानने से मान्यता में मिथ्यात्व हो जाता है। यह मिथ्यात्व ही महान दोष है; किंतु जगत को इस दोष की खबर नहीं, और इसे प्रथम दूर किये बिना अन्य अव्रतादि दोष दूर करने का प्रयत्न करता है। किंतु मिथ्यात्व दूर किये बिना अन्य दोष कभी दूर नहीं होंगे, तथा सत् का यथार्थ स्वरूप समझे बिना मिथ्यात्व कभी दूर नहीं होगा। सत् को समझना, वह मूल धर्म है।

विश्व में जितने सत् हैं, उन सबको जानने की शक्तिवाला ज्ञान है; ऐसे ज्ञानस्वभाव की प्रसिद्धि के लिये इस पंचास्तिकाय का वर्णन है। अनंत सत् पदार्थ हैं, तो उन्हें जानने की शक्तिवाला ज्ञान भी सत् है। ज्ञान की प्रतीतिपूर्वक पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिये ज्ञान की प्रसिद्धि, वह शास्त्र का तात्पर्य है। यह समयव्याख्या (अर्थात् शास्त्र की टीका) सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी है; इसमें वर्णित वस्तुस्वरूप की पहिचान करने से सम्यग्ज्ञानरूपी ज्योति प्रगट होती है—ऐसा तीसरे कलश में आचार्यदेव ने कहा है; भगवान की दिव्यवाणी में शुद्ध आत्मा की उपलब्धि का मार्ग आया है; इसलिये वह वाणी हितकर है तथा परमार्थरसिक जीवों के मन को मोहित करनेवाली है, मधुर है। उस वाणी में बतलाये गये वस्तुस्वरूप का यह वर्णन है।

उत्पाद-व्यय-ध्रुव ऐसे त्रिलक्षणरूप सत्पना प्रत्येक वस्तु में है; सिद्ध में भी तीन लक्षण हैं तथा एक परमाणु में भी त्रिलक्षणपना है; उत्पाद-व्यय-ध्रुवता से रहित कोई भी द्रव्य नहीं होता। सभी पदार्थ सत् हैं—उनकी प्रतीति करना, वह ज्ञान का कार्य है। जगत में छह द्रव्य हैं—वे ऐसा प्रसिद्ध करते हैं कि ज्ञान का ऐसा सामर्थ्य है कि छह द्रव्यों के अस्तित्व को जानता है। इसप्रकार सत् को जानने से ज्ञान की प्रसिद्धि होती है। छह द्रव्यों को जो स्वीकार नहीं करता, उसे ज्ञान के अपार सामर्थ्य की खबर नहीं है। यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के अर्थ शब्दसमय के

संबंध से अर्थसमय कहने का इरादा है—ऐसा तीसरी गाथा में आचार्यदेव ने कहा है।

* * *

सत्तारूप वस्तु को जिसप्रकार सत्पना है, उसीप्रकार असत्पना भी है; इसप्रकार सत्ता वह प्रतिपक्षसहित है। स्वचतुष्टयरूप से जो सत् है, वही परचतुष्टयरूप से असत् है। इसप्रकार वस्तु में सत्पना तथा असत्पना दोनों एकसाथ हैं। सत् के जितने भी अवांतर भेद हैं, वे सभी अपने-अपने स्वरूप से सत् हैं। एक अंश वह संपूर्ण सत्रूप नहीं है, इसलिये इस अपेक्षा से उसको असत्पना है।

वस्तु की सत्ता में त्रिलक्षणपना तथा अत्रिलक्षणपना दोनों एकसाथ हैं। संपूर्ण सत् अपेक्षा से वह एकसाथ उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप होने से उसको 'त्रिलक्षणपना' है; तथा उत्पाद को, व्यय को एवं ध्रुव को प्रत्येक को अपना-अपना एक ही लक्षण होने से त्रिलक्षणपना नहीं है इसलिये 'अत्रिलक्षणपना' है।

सामान्य सत् में सर्व पदार्थ आ जाते हैं, इसलिये महासत्ता के रूप में सत्ता एक है; तथा प्रत्येक पदार्थ की स्वरूपसत्ता भिन्न-भिन्न है, इसलिये सत्ता को अनेकपना भी है। इसप्रकार सत्ता में एकपना तथा अनेकपना दोनों का समावेश हो जाता है। अथवा वस्तुस्वरूप से एक तथा गुण-पर्याय से अनेक, इसप्रकार प्रत्येक वस्तु में एक-अनेकपना विद्यमान है।

सामान्यरूप से जो सत्ता सर्व पदार्थों में स्थित है, उसी सत्ता का अवांतर सत्ता के रूप में एक पदार्थ में स्थितपना है; 'सब है'—इसप्रकार सब सत् होने पर भी, उसमें जीव की सत्ता अपने जीवस्वरूप में ही है, अजीव की सत्ता अजीव में ही है;—इसप्रकार सत्ता एक पदार्थ स्थित है।

महासत्ता विश्वरूप है और अवांतर सत्ता एक-एक पदार्थरूप है—इसप्रकार उनको प्रतिपक्षपना है।

महासत्ता अनंतपर्यायमय है तथा अवांतरसत्ता एकपर्यायमय है। अनंत पर्यायमयपना तथा एक पर्यायमयपना दोनों प्रतिपक्षी होते हुए भी सत्ता में वे दोनों विद्यमान हैं। इसप्रकार सत्ता का द्विविध स्वरूप है।

अनंत पदार्थों की सत्ता जगत में है, किंतु उसका स्वीकार स्वसत्ता के सन्मुख होकर होता है। अनंत पदार्थों के सामने देखकर ज्ञान उसको नहीं जानता किंतु स्वसत्ता के सन्मुख हुआ ज्ञान

ही सर्व पदार्थों की सत्ता को जानता है। जगत के सभी पदार्थ सत् हैं; इसलिये यहाँ केवलज्ञान सत् है–ऐसा नहीं; केवलज्ञान का सत्पना स्वयं से है; पदार्थों का सत्पना उनके अपने से है। किसी का सत्पना अन्य के कारण से नहीं। पर का अस्तित्वपना तेरे द्वारा नहीं कि तू उनको स्थिर रखे। तेरा आस्तिपना तुझमें है, पर का आस्तिपना पर में है। अब, एक वस्तु के सत् के जो अंतर्भेद (गुण–पर्याय या उत्पाद–व्यय–ध्रुव) उनमें भी प्रत्येक भेद का सत्पना अपने–अपने से है। ज्ञानपर्याय, ज्ञानपर्यायरूप से सत् है, दर्शनपर्याय, दर्शनपर्यायरूप से सत् है, किंतु ज्ञान की सत्ता, वह दर्शन की सत्ता नहीं। एक गुण की अनंत पर्यायों में भी प्रत्येक पर्याय अपने–अपने स्वरूप से सत् है। एक पर्याय के सत् के कारण दूसरी पर्याय का सत् नहीं है; संपूर्ण वस्तु के सत्पने में सभी गुण–पर्याय समा जाते हैं तथा उत्पाद–व्यय–ध्रुव भी उसमें समा जाते हैं। देखो, ऐसे सत् को जानने की आत्मा में शक्ति है, आत्मा ज्ञान का महान भंडार है, उसमें सब जानने की शक्ति है। चाहे जितना जाने तो ज्ञान का भंडार कभी खाली हो जाए, सो नहीं है। अहो, वीतरागमार्ग की ऐसी परंपरा सर्वज्ञ के उत्तराधिकारी दिगम्बर संतों ने बना रखी है।

अनंत सिद्ध भगवंत, अनंत परमाणु, अनंत जीव—इन सभी के द्रव्य–गुण–पर्याय को जानने की सामर्थ्यवाली एक केवलज्ञानपर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय के उत्पाद का तो उत्पाद एक ही लक्षण है; ध्रुव है, इसलिये वह उत्पाद है या व्यय है; इसलिये वह उत्पाद है—ऐसा नहीं। पर के उत्पाद–व्यय–ध्रुव तो उस पर्याय में नहीं; किंतु स्वयं में जो उत्पाद है, वह व्यय या ध्रुव के कारण नहीं। उत्पाद का लक्षण उत्पाद ही है, व्यय का लक्षण व्यय ही है, ध्रुव का लक्षण ध्रुवता ही है; इसप्रकार उन सबको एकलक्षपना ही है। संपूर्ण जो सत् वह एकसाथ उत्पाद–व्यय–ध्रुव ऐसे त्रिलक्षणवाला है।

आत्मा का ध्रुवस्वभाव अनंत गुणों का सागर, और उसकी एक पर्याय में केवलियों को जान लेने की शक्ति; वह ज्ञान का गंभीर समुद्र, महान परमेश्वर है। ऐसे केवलज्ञान का उत्पाद स्वयं के कारण से है। समवसरण में भगवान विराजमान हैं; ज्ञानी का लक्ष वहाँ गया और भगवान का ज्ञान हुआ, वहाँ उस ज्ञान का उत्पाद अपने में है और भगवान का उत्पाद भगवान में है। अरे, ऐसा ज्ञान का महान समुद्र, वह राग का कर्ता नहीं हो सकता। इसलिये राग के कारण ज्ञान का उत्पाद होता है, ऐसा भी नहीं। ऐसे स्वतंत्र वस्तुस्वभाव को जाने, वहाँ राग की कर्तृत्वबुद्धि भी नहीं रहती; तथा पर का तो अपने में अभाव है ही।

उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप जो त्रिलक्षणी वस्तु है, उसके ध्रुव में अनंत गुणों का समावेश है। ध्रुव को महासत्ता मानकर उसके अंतर्गत भेद (अवांतर सत्ता) देखो तो अनंत गुणों की सत्ता है। गुणों का महान सागर, उसमें अनंत गुणों की ध्रुवता, वह ध्रुव के कारण है, उसमें प्रति समय पर्यायों का उत्पाद, वह उत्पाद के कारण है, व्यय वह व्यय के कारण है। ऐसे संपूर्ण पदार्थरूप विश्व को जानने की ज्ञान की शक्ति है। अरे, ऐसे ज्ञान को राग का काम सौंपना वह विपरीत है।

साधक को ज्ञान का और राग का उत्पाद एक साथ होते हुए भी, यह राग है तो ज्ञान है—ऐसा नहीं, या ज्ञान ने राग को उत्पन्न किया, ऐसा भी नहीं है। अहो, अलौकिक गंभीर वस्तुस्वरूप है। ऐसे द्रव्यानुयोग का सूक्ष्म अभ्यास करना, ऐसा श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा है। जिसकी अभिलाषा सदैव सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने की हो, वह जीव महावीर के उपदेश का पात्र है। अरे, ऐसे वस्तुस्वभाव का अनादर करके अन्य चाहे जो करे और उसको धर्म मान ले तो उसे धर्म नहीं हो सकता। सत्ता का महान भंडार, अस्तिकाय का स्वरूप, उसका यह वर्णन है। उत्पाद, वह ध्रुव को देखता अवश्य है, किंतु उत्पाद स्वयं ध्रुव नहीं; ध्रुव का लक्षण ध्रुव है तथा उत्पाद का लक्षण उत्पाद है। 'सत्' परमेश्वर आत्मा, उसमें यह सब समा जाता है। अरे भाई, अपने चैतन्य-निधान में दृष्टि तो लगा।

उत्पाद-व्यय-ध्रुवता, वे वस्तु की स्वतंत्रता को प्रसिद्ध करते हैं। अग्नि के उत्पाद-व्यय-ध्रुव अग्नि में हैं, पानी के उत्पाद-व्यय-ध्रुव पानी में हैं। अग्नि के कारण पानी में उष्ण अवस्था का उत्पाद हुआ, ऐसा नहीं है। उन परमाणुओं में ही उष्ण गुण का वैसा उत्पाद स्वयं के कारण से हुआ है। स्पर्शगुण ध्रुव है; उस ध्रुव के कारण भी उत्पाद नहीं; उत्पाद का लक्षण उत्पाद ही है। ऐसे वस्तुस्वरूप के ज्ञान में केवल वीतरागता का ही मंथन होता है। ऐसे सत् के ज्ञान द्वारा ही धर्म का प्रारंभ होता है। ऐसा ज्ञान होने के पश्चात् स्वरूप में चरना (रमण करना), वही चारित्र है। चैतन्य-हंस राग का चारा नहीं चरता, वह तो वीतरागी आनंदरूपी मोती का चुगनेवाला है। ऐसा चैतन्य-महाप्रभु राग की सहायता से प्राप्त हो जाए, ऐसा नहीं है। राग के विकल्प को तो अंधा-अचेतन कहा है, उसके द्वारा चैतन्यप्रभु कैसे अनुभव में आयेगा? यह तो वीतराग का मार्ग है।

छहों द्रव्यों की सामान्य सत्ता देखने से 'सब है'—इसप्रकार सत्ता एक है; किंतु उसमें छह द्रव्यों की पृथक्-पृथक् सत्ता देखने से सत्ता अनेक हैं; जीव, वह जीव है; पुद्गल, वह पुद्गल है—इसप्रकार जीव सत्ता, पुद्गल सत्ता इत्यादि अनेक सत्ताएँ हैं।

महासत्ता एकसाथ सभी पदार्थों को लक्षित करती है, इसलिये उसे सर्व पदार्थस्थित कहा जाता है; और अवांतर सत्ता प्रत्येक पदार्थ को भिन्न करके लक्षित करती है, इसलिये वह एक पदार्थस्थित है। प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व अपने-अपने निश्चित एकस्वरूप में ही है, इसलिये अवान्तर सत्ता को एकपदार्थस्थित कहा गया है।

महासत्ता में सबका समावेश हो जाता है, इसलिये वह सविश्वरूप और अवांतरसत्ता अपने-अपने एक-एक रूपवाली है। इसप्रकार सत्ता को विश्वरूपपना तथा एकरूपपना है। विश्वरूप कहने से जड़ तथा चेतन सब एकमेक हो जाते हैं, ऐसा नहीं समझना; किंतु जड़ है, चेतन है—इसप्रकार विश्व के समस्त पदार्थों को एकसाथ सत्‌रूप से लक्ष में लेना, सो महासत्ता है।

एक वस्तु में अनंत गुण-पर्यायें हैं; वे प्रत्येक अपने-अपने निश्चित एक-एक स्वरूप से हैं। ऐसी अनंत एक-एक पर्यायें होकर महासत्ता को अनंत पर्यायपना है। एक पर्याय, वह अवांतरसत्ता है। महासत्ता अनंत पर्यायमय है; तथा अवांतरसत्ता एक पर्यायमय है।—इसप्रकार दो नयों द्वारा दोनों प्रकार से सत्ता को पहिचाना जाता है, इसलिये यह सर्व कथन निर्दोष है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।

वस्तु का अस्तित्व अपने कारण से है, पर के कारण उसका अस्तित्व नहीं है, या ईश्वर इत्यादि उसके कर्ता नहीं हैं। सत् का अस्तित्व अपने से ही है। सत् की पहिचान हो तो सम्यग्दर्शन हो जाये।

'सत्' है, उसकी यह प्ररूपणा (सत्पदप्ररूपणा) है। क्या यह शरीर है, इसलिये आत्मा का अस्तित्व है? नहीं; शरीर का अस्तित्व शरीर में है, आत्मा में उसका अस्तित्व नहीं है; और आत्मा का अस्तित्व आत्मा में है, शरीर में उसका अस्तित्व नहीं है; इसप्रकार दोनों का स्वतंत्र भिन्न-भिन्न अस्तित्व है। उसीप्रकार क्या यह इन्द्रियाँ हैं, इसलिये ज्ञान का अस्तित्व है? नहीं; ज्ञान का अस्तित्व आत्मा में है और इन्द्रियों का अस्तित्व जड़ में है; किसी में अन्य का अस्तित्व नहीं है, तथा किसी के कारण अन्य का अस्तित्व नहीं है। सब अपने-अपने से सत् हैं। अहा! कितनी स्वतंत्रता! ऐसे स्वतंत्र अस्तित्व को समझ ले तो, इन्द्रियों के बिना ज्ञान नहीं हो सकता ऐसी बुद्धि मिट जाये और सम्यग्ज्ञान होकर शांति का प्रगट अनुभव हो।

●●

सदा आनंदरूपी मोती चुगनेवाला....

चैतन्य-हंस

(प्रवास वर्णन : १)

सोनगढ़ से माघ कृष्णा अमावस्या के प्रात:काल मंगल प्रस्थान के समय मंगलरूप में स्वामीजी ने कहा था कि यह आत्मा चैतन्य-हंस है; जिसप्रकार मानसरोवर में रहनेवाला हंस सच्चे मोती का चारा चरनेवाला है; वह कंकड़ नहीं चुगता तथा जुवार के दानें भी नहीं चुगता; उसीप्रकार सुख के सरोवर में रहनेवाला यह चैतन्य-हंस तो आनंदरूपी मोती का चारा चरनेवाला है; यह अशुभ-कंकड़ तो नहीं चरता किंतु जुवार जैसे शुभ को भी नहीं चरता। शुभ को भी नहीं चरता, वहाँ अशुभ की तो बात ही कहाँ? यह तो आनंद के मोती चुगनेवाला है। ऐसा आनंद वह इस चैतन्य-हंस का स्वभाव है। वह महामंगल है।

—ऐसे मंगलपूर्वक दो स्थानों पर पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा तथा दो स्थानों पर वेदी-प्रतिष्ठा के हेतु पूज्य स्वामीजी ने सोनगढ़ से मंगल-प्रस्थान किया। मार्ग में भी इसी का स्मरण करते हुए; एवं ४७ शक्तियों द्वारा आत्मवैभव का स्मरण करते हुए राजकोट पहुँचे।

* **राजकोट:**—राजकोट में दशाश्रीमाली की भोजनशाला में स्वागत-गीत के पश्चात् दो हजार जिज्ञासु श्रोताओं ने गुरुदेव का मंगल-प्रवचन सुना। प्रवचन में गुरुदेव ने कहा—इस देह से भिन्न आत्मा आनंदस्वरूप है। जिसप्रकार लैंडी पीपल चरपरे स्वाद से स्वयं अपने स्वभाव से ही भरी हुई है, उसमें से चौंसठ पुटी पूर्ण चरपराहट प्रगट होती है, वह कहीं बाह्य में से नहीं आती। इसीप्रकार ज्ञान तथा सुख के स्वभाव से परिपूर्ण आत्मा है, उसमें पूर्ण आनंदस्वभाव भरा हुआ है, उसमें एकाग्र होते ही अपने में से ही आनंद प्रगट होता है। परमात्मा को जो पूर्ण आनंद प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? क्या शरीर में से वह आनंद आया? नहीं; अशुभ या शुभराग में से वह आनंद आया? नहीं; आत्मा में पूर्ण आनंदस्वभाव भरा हुआ है, उसी में से वह प्रगट हुआ है।

प्रात:काल (सोनगढ़) में कहा था कि मानसरोवर के हंस तो मोती चरते हैं, वे कहीं

कंकड़ या जुवार के दाने नहीं खाते; उसीप्रकार शुद्धोपयोगस्वभावी आत्मा, चैतन्य-हंस, तो आनंद का चारा चरनेवाला है, वह राग का चारा नहीं चरता।

आत्मा के स्वभाव की प्रतीति करके साधक कहता है कि—हे प्रभु! आपने हमारे आत्मा को भी अपना ही जैसा शुद्धस्वरूपी देखा है; आनंदकंद आत्मा है, वह शुद्धोपयोगरूप है। निर्विकल्प होकर शुद्ध उपयोग के सरोवर में अतीन्द्रिय आनंद के मोती चुगे, ऐसा यह चैतन्य-हंस है; किंतु स्वयं अपने को भूलकर आनंद के बदले दु:ख का अनुभव करता है।

भगवान को पूर्ण आनंद तथा वीतरागदशा प्रगट हुई, वह कहाँ से आई ? आत्मा में वैसा स्वभाव है, वही प्रगट हुआ है, उस स्वभाव में एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किया, वही धर्म है, वही उत्कृष्ट मंगल है।

आत्मा आनंद के वैभववाला है, वह शरीर से तथा संयोग से अपने आनंद की भिक्षा मांगे, यह उसे शोभा नहीं देता। अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख तथा वीर्य ऐसे स्वचतुष्टय से परिपूर्ण भगवान आत्मा को दृष्टि में लेते ही आनंद तथा सुख का अनुभव होता है, यह मंगल है।

इस दशाश्रीमाली भोजनशाला में संवत् १९८९ में (-३७ वर्ष पहले) तीन-तीन हजार स्त्री-पुरुषों के बीच बिना लाउडस्पीकर के गुरुदेव प्रवचन करते थे, वह पुरानी स्मृति पुन: जागृत हो जाती थी।

राजकोट में दोपहर को समयसार के प्रथम कलश पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव ने कहा था कि—यह समयसार एक 'आत्मशास्त्र' है। समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा, उसे बतलानेवाला यह शास्त्र है। इसके मंगल-श्लोक में कहते हैं कि इस अनंत गुण के धाम शुद्ध आत्मतत्त्व को नमस्कार हो। अंतर में असीम ज्ञान-आनंद स्वभाव है—जिसमें शरीर नहीं, जिसमें जड़कर्म नहीं, जिसमें राग-द्वेष नहीं—ऐसा सारभूत आत्मा यह समयसार है। वह किसप्रकार जाना जाता है ?—कि स्वानुभव के द्वारा स्वयं अपने को जानता है।

ऐसा आत्मा चैतन्यभावमय है; चैतन्य इसका 'भाव' है; जिसप्रकार सुवर्ण का भाव (अर्थात् सुवर्ण का पीलापन आदि गुण) उससे भिन्न नहीं है, उसीप्रकार द्रव्य का भाव भी उससे भिन्न नहीं होता। आत्मा का चित्स्वभाव आत्मा से भिन्न नहीं होता। आत्मा के ज्ञान तथा आनंद आत्मा से भिन्न नहीं होते। जहाँ आत्मा है, वहीं आनंद है; जहाँ आत्मा है, वहीं ज्ञान है, यहाँ ज्ञान तथा आनंद है, वहीं आत्मा है। इसप्रकार आत्मा अपने भावों से भिन्न नहीं है। ऐसे

आत्मा के अंदर अनंत आनंद के निधान पड़े हुए हैं, उसकी स्वानुभूति होते ही आनंद आता है, उसके द्वारा आत्मा प्रकाशित होता है कि 'मैं ऐसा हूँ।'

(तीन-चार हजार नर-नारी एवं बालक जिज्ञासासहित आत्मतत्त्व की—स्वानुभूति की यह बात श्रवण करते थे। तब ३७ वर्ष पहले का वह दृश ताजा हो जाता था कि जब ४३ वर्ष की उम्र में गुरुदेव इस भोजनशाला को लाउडस्पीकर के बिना भी आत्म-प्रवचन से गुँजाते थे; उस समय भी संपूर्ण भोजनशाला श्रोताजनों से भर जाती थी।)

गुरुदेव कहते हैं कि हे भाई! अपनी दशा को स्वोन्मुख करके अंतर में देख। इस जड़ शरीर का ढाँचा तू नहीं है। भीतर चैतन्यस्वरूप आत्मा आनंद का कंद है, वह कहीं शरीररूप नहीं हुआ है। स्वानुभूति के द्वारा ही ऐसा आत्मा जानने में आता है।—इस बात को परमेश्वर के प्रतिनिधि ऐसे उन संतों ने स्वयं अनुभव करके शास्त्र में लिखा है। राग से पार ऐसी अंतर की अनुभूति के द्वारा तेरा आत्मा तुझे प्रत्यक्ष होगा। जिसे ऐसा अनुभव होता है, उसके आत्मा में आनंद का समुद्र उछलने लगता है... तब सम्यग्दर्शन होता है, तब धर्म हुआ कहा जाता है और वह जीव भगवान के मार्ग पर चलने लगता है।

इधर आओ....

चैतन्यतत्त्व के अनुभव में जो जागृत नहीं है और राग के कही अनुभव में लीन होकर सोते हैं, ऐसे अंध प्राणियों को जगाकर आचार्यदेव कहते हैं कि—अरे जीवो! तुम जागो... और अपने चैतन्यमय तत्त्व को राग से अत्यंत भिन्न देखो। राग में तुम्हारा निजपद नहीं है, तुम्हारा निजपद चैतन्य में है, उसे देखो... देखो! राग की ओर अनादिकाल से दौड़ रहे हो, वहाँ से लौटो और अंतर में चैतन्यपद की ओर आओ... अपने चैतन्यपद को देखकर आनंदित होओ!

शिपुर (अंतरिक्ष पार्श्वनाथ) में पार्श्वनाथप्रभु की प्रतिष्ठा का

पंचकल्याणक महोत्सव

फाल्गुन कृष्णा नवमी, दिनांक २ मार्च को श्री कानजीस्वामी शिरपुर पधारे... भव्य स्वागत के पश्चात् प्राचीन जिनमंदिर में (अंतरिक्ष पार्श्वनाथवाले मंदिर में) दर्शन करके वहाँ जैनधर्मध्वज लहराया; पार्श्वनगर जहाँ मंगलमहोत्सव प्रारंभ करना था, वहाँ भव्यमंडप में मंगलगीत एवं स्वागत समारोह के पश्चात् श्री स्वामीजी ने मंगल-प्रवचन करते हुए मंगल-शब्द का अर्थ किया कि भगवान आत्मा का स्वभाव स्वयं साक्षात् मंगलरूप है, वह तीनों काल परमार्थ है—मंगल है, उसके आश्रय से वीतरागता प्रगट करना मंगल है। सम्यक्त्वादि पवित्रदशा को प्राप्त कर मिथ्यात्वादि पाप को गाले-नष्ट करे, वह सच्चा मंगल है।

'वंदित्तु सव्वसिद्धे'। समयसार की प्रथम गाथा की टीका में प्रारंभ में ही 'अथ' शब्द है; वह अपूर्व साधक भाव के प्रारंभ को सूचित करता है। सर्वप्रथम सिद्धभगवंत को आत्मा में स्थापित करके 'समयसार' का प्रारंभ करते हैं कि—आनंदस्वरूप आत्मा को दृष्टि के द्वारा अब सिद्धदशा के साधकभाव का प्रारंभ होता है, वही अपूर्व मंगल है। 'अंतरिक्ष' अर्थात-राग का भी जिसको आलंबन नहीं है, ऐसा नित्य निरालंबी भगवान आत्मा, उसके आश्रय द्वारा जो राग-द्वेष-मोह रहित ऐसा अतीन्द्रिय आनंद प्रगट किया, वही हमारा अपूर्व मंगल है; और जगत के सभी जीवों को भी वही मंगलरूप है। इसप्रकार मंगलपूर्वक यहाँ महान उत्सव का प्रारंभ हुआ।

महाराष्ट्र में अकोला से ४५ मील दूर शिरपुर करीब आठ हजार जनसंख्यावाला प्राचीन ग्राम है, यहाँ दो जिनमंदिर हैं। दिगम्बर जैनों के करीब ५० घर हैं; वहाँ नवीन चैत्यालय में पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा का भव्य महोत्सव फाल्गुन कृष्णा नवमी से फाल्गुन शुक्ला दूज तक मनाया गया।

स्वागताध्यक्ष कारंजा निवासी सेठ ऋषभदासजी के सुपुत्र श्री नरेन्द्रकुमारजी ने स्वागत-प्रवचन किया; तथा ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी—जिन्होंने तन-मन-धन लगाकर अपार उत्साहपूर्वक अंतरिक-पार्श्वनाथ आदि जिनमंदिरों की सुरक्षार्थ तथा दिगम्बर जैन समाज के

मूलभूत अधिकार पुनः प्राप्त करने के लिये सुयोग्य प्रयत्न किया है, आपने प्रथम पार्श्वप्रभु की भावभीनी स्तुति के द्वारा मंगलाचरण किया।

उत्सव के समय शिरपुर के बाहर पारसनगर बनाया गया था, जिसकी शोभा दर्शनीय थी। बम्बई में जैसी मंडप-रचना होती है, ऐसी ही भव्य रचना उस छोटे से ग्राम में हुई थी। मराठी-हिन्दी-गुजराती अनेक भाषा के साधर्मियों का धार्मिक मेला और सुंदर व्यवस्था देखकर आनंद होता था।

शिरपुर में दो जिनालय हैं—(१) पवली मंदिर है, उसमें करीब ६०० वर्ष प्राचीन दिगम्बर जैन प्रतिमा पार्श्वनाथप्रभु की है। उसी मंदिर के नीचे खुदाई होने पर अनेक प्राचीन दिगम्बर जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं; प्राचीन मंदिर के प्रत्येक स्तंभ में अनेक दिगम्बर जिन प्रतिमाएँ अंकित हैं, मानों ये पाषाण-स्तंभ भी पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि यहाँ वीतरागी दिगम्बर जिनबिम्ब विराजमान हैं। मंदिरजी में विराजमान पार्श्वनाथप्रभु की प्रतिमा अतीव मनोज्ञ है, मंदिर के समीप ही एक नूतन चैत्यालय का निर्माण हुआ है, जिसमें पार्श्वप्रभु की प्रतिष्ठा के लिये यह पंचकल्याणक महोत्सव हुआ।

दूसरा प्राचीन मंदिर जमीन के नीचे भोंयरे में है, जिसमें सभी (सोलह) वेदियों में दिगम्बर जिनबिम्ब विराजमान हैं, तथा 'अंतरिक्ष-पार्श्वनाथ' के नाम से प्रख्यात वह मूर्ति (प्रतिमाजी) भी वहीं विराजमान है। मूलनायक के रूप में मूल प्रतिमाजी दिगम्बर शैली में अर्धपद्मासन विराजमान है। जो तीन फुट की उत्तम पाषाण निर्मित है। वर्तमान में तो उनके पूजन के लिये दिगम्बर-श्वेताम्बर लोगों को तीन-तीन घण्टे की बारी होती है। दिगम्बर जैन उस मूर्ति की दिगम्बर रूप में निराभरण-वीतरागी दशा में पूजा करते हैं। निराभरण दशा में जो सहज निर्मल वीतरागता झलकती है, वह साभरण दशा में ढँक जाती है।

वीतराग देव को देखते ही हृदय में सहज ही काव्य की स्फुरणा हुई कि—

अंतरिक्ष प्रभु आप ही सच्चे, देख रहे निज आतमराम,
राग अंश का नहीं आलंबन, स्वयंज्योति हो आनंदधाम।
रत्नत्रय आभूषण सच्चा, जड़ आभूषण का नहीं काम,
तीन लोक के मुकुट स्वयं हो... क्या है स्वर्ण-मुकुट का काम ?

प्रतिष्ठा-महोत्सव में समाज का उत्साह अनोखा था। प्रथम दिन ५००० संख्या थी;

मंगल-प्रवचन के पश्चात् जैन झंडारोपण हुआ जिसकी बोली श्री धन्यकुमारजी मोतीरामजी बेलोकर ढसालावालों ने ली थी।

दोपहर को अध्यात्म-प्रवचन सप्ताह का उद्घाटन करने के लिये जिलाधीश महोदय ने पूज्य स्वामीजी से प्रार्थना की, और गुरुदेव ने श्री समयसारजी की ७२वीं गाथा पर प्रवचन प्रारंभ किये। हजारों श्रोता एकाग्रचित्त से अध्यात्म वाणी सुनते थे। रात्रि को अध्यात्म चर्चा का सुंदर कार्यक्रम रहा। पंचकल्याणक उत्सव में विशेष ज्ञानप्रचारार्थ 'जैन बालपोथी' मराठी भाषा में १० हजार प्रतियाँ छोटे-बड़े सभी को भेंटस्वरूप दी गई; जिसका वितरण प्रारंभ में गुरुदेव द्वारा हुआ था। महोत्सव के प्रारंभ में पंचपरमेष्ठी पूजन-विधान हुआ था।

तारीख ४-३-७० सवेरे नांदिविधान, मंगलकुंभ स्थापना, इन्द्रप्रतिष्ठा, आचार्यअनुज्ञा आदि विधि संपन्न हुई। विधिनायक भगवान के माता-पिता बनने का सौभाग्य खैरागढ़ निवासी श्री खेमरामजी बाफना तथा उनकी धर्मपत्नी श्री झंकारीबहिन को प्राप्त हुआ; उन्होंने ११,१११) रुपये की बोली लगायी थी। प्रथम सौधर्म इन्द्र एवं शची इन्द्राणी बनने का सौभाग्य श्री मंगलचंदजी बेलोकर तथा उनकी धर्मपत्नी चेलनादेवी को प्राप्त हुआ; आपने २७०००) की बोली लगायी थी। इन्द्रों का विशाल जुलूस धामधूम से नगर में निकाला और पश्चात् सब जिनेन्द्रदेव के दर्शन-पूजन करते आये। दोपहर को यागमंडल विधान द्वारा इन्द्रों ने नौ देवता (अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनालय इन नव देवों) का पूजन किया।

रात्रि को सोनगढ़ निवासी आठ कुमारिका बहिनों के द्वारा पार्श्वप्रभु की मंगल-स्तुति पूर्वक पंचकल्याणक विधि का प्रारंभ किया गया। सौधर्म इन्द्र की सभा में तत्त्वचर्चा, सम्यक्त्व की महिमा, स्त्री पर्याय हीन होने पर भी उसे तीर्थंकर की माता होने की महानता का सौभाग्य आदि रोचक वर्णन हुआ, छह मास पश्चात् भरतक्षेत्र में अवतार लेनेवाले २३वें तीर्थंकर का तथा उनके माता-पिता का बहुमान-विनय करके अष्टकुमारिका देवीओं को माताजी की तथा बालतीर्थंकर की सेवा में नियुक्त किया। भिन्न-भिन्न प्रदेशों की छप्पन कुमारिका, देवियाँ माताजी की सेवा में उपस्थित हुई थीं और अपने को धन्य समझती थीं।

वाराणसी (काशी) नगरी में विश्वसेन राजा की भव्य राजसभा का दृश्य सुंदर था, जिसमें काशी के विद्वान भी उपस्थित थे। वामादेवी माता के सोलह स्वप्नों का दृश्य, तथा

उनका फल दिखाया गया; सर्वत्र आनंदमय वातावरण था। पंचकल्याणक द्वारा सर्वज्ञ-वीतराग होनेवाले प्रभु की महिमा को देख-देख आनंद होता था।

प्रतिष्ठा-विधि सागर निवासी प्रतिष्ठाचार्य श्री पंडित मुन्नालालजी समगौरया ने कराई थी। पूज्य श्री कानजीस्वामी के आने से यहाँ उत्सव का वातावरण बहुत प्रभावशील बन गया था। रात्रि को विद्वानों के प्रवचन के पश्चात् कारंजा श्राविकाश्रम की बहिनों ने भगवान के गर्भ-कल्याणक संबंधी भावभीने सुंदर भक्तिमय अभिनय किये थे। तीर्थंकर की माता के साथ कुमारिका देवियों की विनोद सहित मनोज्ञ तत्त्वचर्चा आदि मनोहर दृश्य बहुत सुंदर ढंग से दिखाये गये थे; उनमें तत्त्वचर्चा का दृश्य तो सम्यक्त्व की महिमा बतलाकर अध्यात्मरस को जागृत करनेवाला था।

दूसरे दिन (तारीख ५ फाल्गुन कृष्ण १३) सवेरे १६ स्वप्नों का मंगल फल, देवियों के द्वारा माताजी की सेवा, तत्त्वचर्चा आदि दृश्य थे। इस प्रतिष्ठा-महोत्सव में भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से प्रतिष्ठा के लिये २३ जिनप्रतिमाएँ आई थीं जो निम्नानुसार हैं:—

(१) आदिनाथ भगवान ढसाला, (महाराष्ट्र)
(२) पार्श्वनाथ भगवान, (४ फुट) शिरपुर
(३) पार्श्वनाथ भगवान, ढसाला
(४) पार्श्वनाथ भगवान, ढसाला
(५) चन्दप्रभ भगवान, ढसाला
(६) आदिनाथ भगवान, ढसाला
(७) पार्श्वनाथ भगवान, ढसाला
(८) पार्श्वनाथ भगवान, (४ फुट)वासीम
(९) महावीर भगवान नागपुर
(१०) महावीर भगवान, वासीम
(११) पार्श्वनाथ भगवान, वासीम
(१२) पार्श्वनाथ भगवान, वासीम
(१३) शांतिनाथ भगवान, वासीम
(१४) आदिनाथ भगवान, (४ फुट) वासीम

(१५) धर्मनाथ भगवान, कानातलाव (सौराष्ट्र)
(१६) शांतिनाथ भगवान, कानातलाव (सौराष्ट्र)
(१७) आदिनाथ भगवान, कानातलाव (सौराष्ट्र)
(१८) महावीर भगवान, कानातलाव (सौराष्ट्र)
(१९) चंद्रप्रभ भगवान, शेलु (मानवत)
(२०) बाहुबली भगवान, अकोला (महाराष्ट्र)
(२१) पार्श्वनाथ भगवान, अकोला (महाराष्ट्र)
(२२) महावीर भगवान, आनसिंग (महाराष्ट्र)
(२३) पार्श्वनाथ भगवान, आनसिंग (महाराष्ट्र)

उत्सव में भाग लेने के लिये अनेक प्रांत के साधर्मीगण बड़ी भारी संख्या में आये थे। सैकड़ों वर्षों में न हुआ हो ऐसा अद्‌भुत उल्लासभरा उत्सव देखकर नगरजन आश्चर्यचकित हो जाते थे। उत्सव में जिनेन्द्र-रथयात्रा आदि सभी अवसरों पर सत्यधर्म-वीतरागी धर्म अर्थात् आत्महित के मार्ग के प्रति, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति जो हर्ष-उल्लास था, वह देखते ही बनता था। जैनधर्म के जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था, हजारों भक्तों के हृदय में उछलता हुआ भक्तिमय आनंद का दृश्य तीर्थंकर के जीवंतमार्ग को जगत में प्रसिद्ध कर रहा था। जैनधर्म का ऐसा गौरव देखकर धर्मोल्लास से हृदय उछल रहा था। ऐसे उल्लासपूर्ण वातावरण में सवेरे प्रवचन के बाद अंतरिक्ष पार्श्वनाथ प्रभु के समक्ष पूज्य बहिनश्री-बहिन ने समूह-पूजन और भक्ति करायी थी।

सवेरे के प्रवचनों में सम्यक्त्व के विषयों का वर्णन और दोपहर के प्रवचन में देव-पूजा, गुरुभक्ति, दानादि द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित देव-शास्त्र-गुरु की अपार महिमा और उनका स्वरूप समझाते थे। दोपहर को रथयात्रा थी। रात्रि को कंकुबाई श्राविकाश्रम कारंजा बालमंदिर के बालकों द्वारा (शिक्षिका बहिनों के निर्देशन में) नमस्कार मंत्र की महिमा अथवा 'अमरकुमार की अमर कहानी' नामक अभिनय किया गया था। जो बहुत प्रशंसनीय, धर्म-प्रेरक, वैराग्य-पोषक था। सचमुच बालमंदिर के छोटे बालकों का अभिनय सराहनीय था। यदि बचपन से ही बालकों को धार्मिक संस्कार दिये जायें तो वे धर्म प्रभावना में कितना महत्त्वपूर्ण योग दे सकते हैं, यह प्रत्यक्ष दिखायी देता था। छोटे-छोटे बच्चों के द्वारा प्रस्तुत की

गयी धार्मिक भावनाओं को देखकर लगभग पन्द्रह हजार लोगों की सभा धन्य धन्य ! वाह वाह ! पुकार रही थी। भारतभर की जैन संस्थाएँ लाखों बालकों में धार्मिक संस्कारों का सिंचन करने के लिये एक बनकर किसी भी जाति के प्रतिबंध रहित मुक्त हृदय से कटिबद्ध हो जायें तो जैनधर्म की सबसे महान सेवा हो सकती है। एक मंदिर या एक मूर्ति के लिये हम लोग जितने समय, शक्ति एवं उत्साहपूर्वक प्रयत्न करते हैं, उससे हजारों गुना प्रयत्न लाखों बालकों और युवकों को धर्मसंस्कार देने के लिये करना अत्यंत आवश्यक है।

(माघ कृष्णा १४, तारीख ६-३-७०) विश्वसेन महाराजा के दरबार में २३वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु के मंगल जन्म की बधाई आ पहुँची और आनंद ही आनंद छा गया। घंटनाद हुआ... बाजे बजने लगे... हजारों लोग भक्तिवश इस वाराणसी (काशी) नगरी की ओर प्रभुजी का जन्मोत्सव देखने के लिये दौड़ने लगे... देवियाँ मंगलगीत गाती हुई हर्षनाद से नृत्य करने लगी; इन्द्रों का इन्द्रासन कंपायमान होने लगा... अवधिज्ञान से तीर्थंकर-जन्म जानकर इन्द्र ने आनंदसहित सिंहासन से नीचे उतरकर उस दिशा में आगे चलकर प्रभु को नमस्कार किया... इस नमस्कार के द्वारा यह प्रसिद्ध किया कि जगत में पुण्यफलरूप ऐसे इस इन्द्रपद की महिमा हमें नहीं है। किंतु धर्मतीर्थ के प्रणेता तीर्थंकर की ही अपार महिमा है। हे जीवो ! तुम पुण्य की महत्ता छोड़कर सर्वज्ञ वीतराग कथित वीतराग धर्म को ही श्रेष्ठ जानकर उसकी भक्तिसहित उपासना करो।

शीघ्र ही ऐरावत हाथी पर इन्द्र की सवारी काशीनगरी में आ पहुँची; प्रदक्षिणा करके इन्द्राणी शचीदेवी ने माताजी के पास जाकर बालतीर्थंकर को गोदी में ले लिया... अहा ! प्रभु का स्पर्श होते ही मानों मोक्ष का ही स्पर्श हुआ हो... ऐसे आनंद से वीतराग की परममहिमा आने से वह इन्द्राणी एकभवावतारी बन गयी। इन्द्राणी प्रभु को गोद में ले जाकर सौधर्म इन्द्र को देती है। धन्य ! इन्द्र तो आश्चर्य से टकटकी लगाकर देखता ही रह जाता है... क्षायिक सम्यग्दृष्टि बाल प्रभु को देखकर उसके हजार नेत्र तृप्त-तृप्त हो गये और ऐरावत हाथी पर विराजमान करके प्रभु को मेरुपर्वत की ओर ले चला... सवारी का जुलूस इतना लम्बा था कि एक छोर तो मेरु तक पहुँच गया तब अंतिम छोर मंडप के पास ही चलता था; सारी शिरपुरनगरी जन्माभिषेक देखने को उमड़ी पड़ी थी। आश्चर्यकारी था वह भगवान का जुलूस, और अद्भुत था भक्तों का उत्साह। १५ हजार भक्तों का जुलूस विविध भाषा में सत्यधर्म-दिगम्बर जैनधर्म के जयघोष से

आकाश गुँजा रहा था;—'पारस प्रभु के पथ पर चलने भक्त सभी तैयार हैं; जिनशासन की रक्षा के हित, सिर देने तैयार हैं'—ऐसे धर्मप्रेम के नारों से नगरी गूँज रही थी।

मेरुपर्वत की रचना थी, वहाँ आकर इन्द्रों ने तीन प्रदक्षिणा की; आनंद भरे कोलाहल के बीच पार्श्वनाथ तीर्थंकर का जन्माभिषेक प्रारंभ हुआ। दृश्य बड़ा ही अद्भुत था! ऐसी जिनेन्द्र-महिमा देखकर ग्रामीणजन बड़े प्रेम सहित धार्मिक भावना से उत्साह सहित दर्शन करते थे। श्री कानजीस्वामी ने भी जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया। आसपास के साधर्मियों ने करीब सवा हजार जितने कलश लिखाये थे; मात्र जन्माभिषेक में ही ७५०००) जितनी रकम दान में आयी थी। सर्वत्र आनंद-भक्ति-नृत्य और जय-जयकार के मंगल हर्षनाद के बीच जन्मोभिषेक विधि संपन्न हुई और इन्द्राणी ने दिव्य वस्त्राभरण से वहाँ बाल तीर्थंकर का शृंगार किया; जिनेन्द्र भगवान की सवारी मेरुगिरि से वापिस काशी नगरी में आयी। माताजी की गोद में उनके पुत्र को सौंपकर इन्द्र-इन्द्राणी ने आनंदमय नृत्य किया, साथ-साथ हजारों भक्त भी आनंद से नाच उठे।

इस उत्सव के अवसर पर कारंजा निवासी ऋषभदासजी श्रेष्ठी के पौत्र 'प्रदीपकुमार' उम्र नौ वर्ष, जो अनेक विषयों में तीक्ष्णबुद्धि सम्पन्न हैं, कालेज के छात्रों के समक्ष डेढ़ घंटे तक भाषण दे सकते हैं, धार्मिक प्रश्नों का अच्छी तरह उत्तर देते हैं; उन्होंने श्री कानजीस्वामी से करीब आधे घंटे तक धार्मिक चर्चा की, पंडितगण भी प्रसन्न हुए। विशेषता तो यह है कि यह सब उनको किसी के द्वारा बिना पढ़ाये आता है। श्री प्रदीपकुमार को एक प्रश्न यह पूछा गया कि भगवान की पूजा करने का भाव क्या है ? तो कहा कि शुभराग है। शुभ पुण्य है, अशुभ पाप है, किन्तु मोक्ष में जाने के लिये उसका कोई उपयोग नहीं।' ....धन्य है! ऐसे छोटी उम्र के संस्कार बच्चे भी जिस प्रेमसहित धर्म की उपासना कर रहे हैं, वह जैन समाज में एक गौरव की बात है।

दोपहर को प्रवचन के पश्चात् पालना झुलाने की विधि हुई.... सम्यक्त्व के पालने में झूलते हुए उन छोटे से प्रभुजी को माताजी परम प्रेम से लोरियाँ गा-गाकर झुला रही थीं; रात्रि को राजतिलक के पश्चात् राज दरबार का दृश्य हुआ।

पारस प्रभु की प्रतिष्ठा का यह महोत्सव बहुत ही आनंदोल्लास सहित मनाया जा रहा था। शिरपुर नगरी में ऐसा मंगल-महोत्सव देखकर जैन जनता तो प्रसन्न होती ही थी, किंतु नगर

की समस्त जनता भी हर्षविभोर हो रही थी। नगर के मुख्य व्यक्तियों ने सभा में आकर गुरुदेव का सत्कार किया और ऐसी भावना व्यक्त की—'मंदिर और मूर्ति जो कि दिगंबरों का है, वह उनको मिल जाना चाहिये। तभी शांति हो सकती है कि जिसकी जो चीज़ है, वह उसको मिल जाये!' अद्‌भुत उत्साह को देखकर एक भाई ने तो कहा कि ऐसी भक्ति देखकर पारस प्रभु को फिर अपने असली दिगम्बर रूप को धारण करना पड़ेगा। जो मूर्ति के ऊपर का बनावटी नकली लेप है, वह उखड़ जाये तो प्रभु की प्रतिमा स्वयं साक्षी देकर साबित कर देंगी कि मैं दिगम्बरी हूँ; रेत और गोबर की नहीं हूँ किंतु पाषाण की बनी हुई हूँ। अंतरिक्ष पार्श्वनाथ का जो मंदिर है, उसमें सभी वेदियों में दिगम्बर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, उसमें कोई मतभेद नहीं; सिर्फ एक पार्श्वनाथ की मूर्ति है, उस प्रतिमा संबंधी मतभेद है—जिस प्रतिमा के लिये श्वेताम्बर बंधु कह रहे हैं कि वह तो रेत और गोबर की बनी हुई है। तब दिगम्बर लोग कहते हैं कि वह तो पाषाण की ही है; ऊपर का लेप कृत्रिम-बनावटी नकली लेप है; उस लेप को दूर किया जाय तो भगवान का असली स्वरूप तुरंत स्पष्ट हो जाये और झगड़े का फैसला अपने आप हो जाये। अरे, व्यवहार-कुशल जैन समाज के लिये इतनी छोटीसी सुगम बात भी क्यों बड़ी दुर्गम बन रही है? यह बड़े खेद का विषय है। अंतरिक्ष-पार्श्वनाथ के नाम से पहचानने में आ रही इस प्रतिमा के बारे में दूसरा समाधान यह है कि भूतकाल में चाहे जैसी हो, किंतु वर्तमान में तो यह प्रतिमा जमीन से अद्धर नहीं है किंतु दाएँ हाथ की ओर तथा बाएँ हाथ के पीछे का थोड़ा भाग, इसप्रकार दो जगह से वह मूर्ति भूमि का स्पर्श करती है; शेष भाग में भूमि से दूरी है; उतना भाग धरती को नहीं छूता। दूसरा पवली जिनमंदिर के नाम से प्रसिद्ध है, वह ५०० वर्ष से भी प्राचीन है; इसके प्रत्येक स्तंभ में प्राचीन दिगम्बर जैन मूर्तियाँ खुदी हुई हैं और उसमें विराजमान सभी मूर्तियाँ दिगम्बर हैं, तथा खुदाई में से निकली हुई सभी (कितनी ही मूर्तियाँ बड़ी-बड़ी और खंडित हैं वे भी) दिगम्बरी ही हैं, और पाँच सौ वर्ष के प्राचीन शिलालेखों में 'श्री कुन्दकुन्द नमः' ऐसा स्पष्ट उल्लेख है—ऐसा स्पष्ट दिख रहा है; फिर भी श्वेताम्बर भाई उस मंदिर पर भी अपना दावा क्यों कर रहे होंगे? यह बात समझ में नहीं आती।....यहाँ का सौ वर्ष का इतिहास जाननेवाले और प्रत्यक्ष देखनेवाले नगरजन (जिसमें सौ वर्ष की उम्र के वृद्ध पुरुष भी हैं) वे स्पष्ट कह रहे हैं कि मूल मंदिर दिगम्बरों का ही है। यहाँ प्रथम से ही दिगम्बर जैन ही रह रहे हैं, श्वेताम्बर भाई तो यहाँ थे ही नहीं; वे तो बाद में आकर यहाँ रहने लगे हैं।

विशेष—बड़ा लंबा इतिहास है; परंतु उसकी चर्चा में हम नहीं रुकेंगे, क्योंकि हमें तो पार्श्वकुमार की राजसभा में जाना है—

देखो... कितना मनोहर है प्रभु का दरबार! देशभर के राजागण आ-आकर बहुमान विनय सहित भगवान को भेंट दे रहे हैं। अंत में अयोध्यानगरी का दूत आता है और अयोध्यानगरी के वैभव का, तथा वहाँ होनेवाले श्री ऋषभदेव आदि पूर्व तीर्थंकरों का वर्णन करता है, जिसे सुनते ही पारसकुमार वैराग्य प्राप्त करते हैं।

दूसरे दिन (माघ कृष्णा अमावस्या) सुबह वैरागी राजकुमार श्री पार्श्वनाथ के वैराग्य की अनुमोदना करने को लौकांतिक देव आ पहुँचे। (जो कभी भी अन्य कल्याणकों में नहीं आते, मात्र भगवान के दीक्षा कल्याणक के समय ही आते हैं) लौकांतिक देवों ने प्रभु की स्तुति की, पश्चात् इन्द्र राजा जयनाद करते हुए भगवान को पालकी में ले जाने के लिये आते हैं; एक सुंदर वन में प्रभु की वैराग्य-सवारी आ पहुँची; वह सुंदर वन प्रभु की दीक्षा द्वारा पावन होकर अधिक सुंदर लग रहा था।

जिनदीक्षा अंगीकार करते समय स्वयं भगवान स्वहस्त से ही केशलोंच करते हैं किंतु यहाँ तो स्थापनाविधि होने से मुनिदशा के परम बहुमान पूर्वक कानजीस्वामी ने केशलोंच विधि में भाग लेकर अपनी मुनिदशा की वैराग्य-भावना को पुष्ट किया कि—भगवान तो स्वयं केशलोंच करके दिगम्बर निर्ग्रंथ मुनि हुए, और हम भी केशलोंच करके सर्वज्ञ वीतराग कथित ऐसी दिगम्बर मुनिदशा कब धारण करेंगे? ऐसा अपूर्व अवसर कब आयेगा?—इसप्रकार परम भक्ति और बहुमान व्यक्त किया। पश्चात् वैराग्य से भरे हुए वन के शांति वातावरण में अद्भुत शांतरस की धारा बहाते हुए प्रवचन में कहा—

सभी तीर्थंकर भगवंत दीक्षा लेने के पूर्व वैराग्यपूर्ण बारह भावनाएँ भाते हैं, आत्मा की प्रतीति सहित सभी को वह भाने योग्य हैं—

अपूर्व अवसर ऐसा कब वह आयेगा?
कब हम होंगे बाह्यांतर निर्ग्रंथ औ,
सर्व संबंध का बंधन तीक्ष्ण छेदकर
विचरेंगे कब महत्पुरुष के पंथ पर।

सिद्धभगवंत और तीर्थंकर भगवंतों जैसे महापुरुषों के पंथ में जाकर नग्न दिगम्बर

निर्ग्रंथ मुनिदशा धारण करके राग-द्वेष-मोह और बाह्य परिग्रह के सभी बंधन अत्यंत रूप से छेदकर मुनि होकर मोक्षमार्ग में कब विचरण करेंगे? ऐसी मुनिदशा का धन्य अवसर कब आयेगा? इसप्रकार धर्मी जीव भावना भाते हैं और आज श्री पार्श्वनाथ भगवान ने ऐसी मुनिदशा अभी-अभी धारण की।

मुनिदशा तो महा वीतराग है—मात्र एक शरीर के अतिरिक्त अन्य कोई परिग्रह नहीं है; और शरीर भी वस्त्रादि आवरण रहित ही है। कैसे भी परिषह-उपसर्ग में जहाँ अंतर में राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होती, ऐसी मुनिदशा तो जगत में तीनों काल पूज्य है।

१०-१५ हजार श्रोतागण स्तब्ध होकर वैराग्य-भावना में झूल रहे थे। वन के शीतल शांत वातावरण में वीतरागी आत्मा की उत्तम भावना प्रगट करते हुए श्री कानजीस्वामी कहते हैं कि धन्य है वह मुनिदशा! जहाँ सर्वार्थसिद्धि देव की ऋद्धि हो या रजकण के-पुण्य-पाप के ढेर हों; दोनों के प्रति समभाव ही है। जहाँ ऐसा समभाव है कि मेरा न कोई शत्रु है, न मित्र है; और ऐसी चैतन्यलीनता की धुन है कि!

एकाकी विचरूँगा कब स्मशान में,
अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जो;
अडोल आसन औ मन में नहीं क्षोभता,
परम मित्र का पाया मानों योग जो...
अपूर्व अवसर कब वह ऐसा आयेगा?..

ऐसी भावना तो भगवान भाते थे, और आज वह मुनिदशा भगवान ने साक्षात् प्रगट की, दीक्षा लेकर ध्यान में लीन हुए कि तुरंत ही अप्रमत्तदशा और चतुर्थ ज्ञान भगवान को प्रगट हुआ। एक ओर चार ज्ञानधारी पारस मुनिराज निजध्यान में विराजमान हैं; सामने कानजीस्वामी परम भक्ति द्वारा मुनिदशा की महिमा समझा रहे हैं; सभा में १५ हजार श्रोतागण मंत्रमुग्ध बनकर वैराग्य-भावना की अनुमोदना कर रहे हैं; एकचित्त होकर प्रसन्नता से सुन रहे हैं—सभा में एक मुनिराज हैं, एक अर्जिका हैं, हजारों श्रावक-श्राविका, इन्द्र-इन्द्राणी का समूह और गजेन्द्र भी हैं, महाराष्ट्र-विधानसभा के स्पीकर श्री भारदेजी भी इस प्रसंग पर आ पहुँचे और विनय-बहुमान सहित कहा कि दुनिया में अन्य देश भले ही बड़े समृद्धिशाली माने जाते हों, किंतु पवित्र धार्मिक सांस्कृति दृष्टि से देखा जाये तो आध्यात्मिक दृष्टि में यह भारत देश ही सबसे महान है।

पूज्य स्वामीजी ने मंगल प्रवचन करते हुए कहा कि—देह से भिन्न पूर्ण ज्ञानसुखमय चैतन्यमूर्ति आत्मा भीतर विद्यमान है; वह क्षणिक रागादि से भी भिन्न है; उसकी प्रतीति करना स्वसन्मुख होना मंगल है; जिसप्रकार नारियल का स्वादिष्ट गोला ऊपर की सख्त काचली और जटों से भिन्न है, तथा भीतर की छाल से भी पृथक् है; उसीप्रकार आत्मा सदा चैतन्यघन आनंद की मूर्ति है जो देह से, जड़ कर्मों से और राग से भिन्न है। स्वाश्रयदृष्टि द्वारा उसकी श्रद्धा और अनुभव करना वह मंगल है।

इधर श्रोतागण वैराग्य प्रेरक आध्यात्मिक प्रवचन सुनने में तल्लीन हैं और उधर पारस मुनिराज तो निर्जन वन में विहार कर गये... धन्य है उन लोक-निरपेक्ष दिगम्बर मुनिराज हो! धन्य उनकी वीतरागता! नमस्कार हो उन दिगम्बर मुनिराज के चरणों में....

'णमो लोए सव्व साहूणं'

दोपहर के समय कारंजा बाल मंदिर के छोटे-छोटे बच्चों ने फिर 'अमरकुमार की अमर कहानी' पूज्य कानजीस्वामी की उपस्थिति में प्रदर्शित की; बच्चों के उस धार्मिक संवाद से सभी को खूब प्रसन्नता हुई।

फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को नूतन जिनमंदिर में वेदी-कलश-ध्वज शुद्धि हुई; रात्रि को पार्श्व प्रभु के १० पूर्वभवों का वर्णन दस चित्रों के द्वारा समझाया गया (पार्श्वप्रभु के दस भवों की पुस्तक अंतरिक्ष-पार्श्वनाथ प्रभु के सन्मुख बैठकर लिखने का प्रारंभ किया है, वह छपकर थोड़े समय में प्रकाशित होगी।)

फाल्गुन शुक्ला एकम के सवेरे भक्तिसहित मुनिराज का समूह-पूजन हुआ, प्रवचन के पश्चात् श्री पार्श्वमुनिराज आहार लेने के लिये नगर में पधारे। नवधाभक्ति सहित आहारदान का भव्य प्रसंग हुआ। आहारदान देने का लाभ कारंजा निवासी सेठ श्री ऋषभदासजी तथा सनावद निवासी सेठ कँवरचंदजी को मिला था; शेष हजारों भक्तों ने आहारदान की अनुमोदना की थी; जब मुनिराज वन में जाने लगे, तब मुनिराज के पीछे-पीछे उनके साथ चलते हुए श्रावकों ने परमभक्ति की; वह अद्‌भुत मुनिभक्ति, हृदय में वैराग्य उत्पन्न कर रही थी।

दोपहर को यहाँ एक भव्य दिगम्बर जैन धर्मशाला की शिलारोपण-विधि जैन समाज के अग्रणी सेठश्री शांतिप्रसादजी साहू के सुहस्त से हुई। श्री कानजीस्वामी भी उपस्थित थे। साहूजी ने पच्चीस हजार रुपये धर्मशाला को दिये। बम्बई निवासी सेठश्री कांतिभाई ने भी पच्चीस हजार रुपये धर्मशाला को दिये।

दोपहर को श्री कानजीस्वामी ने जिनेन्द्र-भक्ति सहित भगवान श्री पार्श्वनाथ आदि जिनबिम्बों के ऊपर मंत्राक्षरों द्वारा अंकन्यास विधि की; पश्चात् केवलज्ञान कल्याणक तथा समवसरण रचना और पूजन हुआ। शाम को प्रवचन के बाद साहू शांतिप्रसादजी की अध्यक्षता में तीर्थक्षेत्र कमेटी की सभा हुई, तीर्थक्षेत्रों की रक्षार्थ एवं उद्धार और उन्नति के लिये समस्त जैन समाज को विवेक और जागृति पूर्वक बहुत कुछ करना है, उसका ख्याल कराया गया; ऑल इंडिया रेडियो की नागपुर शाखा के प्रतिनिधि इस महोत्सव की तथा प्रवचनों की 'न्यूज रील' लेने आये थे।

फाल्गुन शुक्ला २ के सवेरे श्री पारसनाथ प्रभु सम्मेदशिखर गिरि पर से निर्वाण पद प्राप्त करते हैं और इन्द्र निर्वाण कल्याणक मनाते हैं, वह दृश्य दिखलाया गया। सवा दस बजे जिनमंदिर में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमाएँ स्थापित की गईं। सोनगढ़ के जिनमंदिर में सीमंधर प्रभु की प्रतिष्ठा का दिन भी आज ही था और सोनगढ़ के संत आज यहाँ परम भक्ति सहित जिनेन्द्र-प्रतिष्ठा कर रहे हैं। हजारों भक्तों के जय-जयकार के बीच श्री कानजीस्वामी ने अपने सुहस्त से पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा की। कमलासन पर पार्श्वनाथ भगवान अत्यंत वीतरागी मुद्रा से सुशोभित हो रहे हैं। मूल पार्श्वनाथ भगवान के अतिरिक्त अनेक भगवंतों की स्थापना हुई थी। पवली जिनमंदिर के भोंहरे में से खुदाई के समय जो दिगम्बर मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं, उन प्रतिमाओं की भी उस मंदिर में विधि सहित पुनः स्थापना की गई। कुन्दकुन्दस्वामी, अकलंकस्वामी आदि दिगम्बर गुरुओं के चरण कमल की भी यहाँ स्थापना हुई है। ऐसा आनंदकारी उत्सव देखकर सबका हृदय पुलकित हो रहा था। सैकड़ों वर्ष पश्चात् आज शिरपुर में ऐसा भव्य उत्सव मनाया गया और पारसप्रभु की महिमा सर्वत्र व्याप्त हो गई। देश के अनेक प्रान्तों से दिगम्बर जैन बन्धुओं ने आ-आकर इस मंगल महोत्सव में बड़ी खुशी से भाग लिया और 'भारत भर के सब जैन एक हैं' ऐसा वातावरण पैदा कर दिया।

उत्सव में क्षेत्र को साढ़े तीन लाख की आय और डेढ़ लाख के करीब खर्च हुआ है। शिरपुर के जैन-जैनेतर बन्धु तथा बासीम कारंजा आदि स्थलों से आकर जैन समाज ने बहुत प्रेमसहित सहयोग देकर उत्सव को सुंदर ढंग से संपन्न कराया है। साथ में एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि इस उत्सव पर श्वेताम्बर भाईयों ने किसी प्रकार की हलचल न करके शांति का निर्वाह किया है जो अत्यंत प्रशंसनीय है। जैन समाज में सदा सर्वत्र ऐसा शांत वातावरण बना रहे तो कैसा अच्छा! आनंद सहित उत्सव समाप्त होते ही दोपहर को शांतियज्ञ,

प्रवचन तथा अंत में जिनेन्द्र भगवान की विशाल रथयात्रा का कार्यक्रम भी संपन्न हुआ और पारसप्रभु के जय-जयकार सहित श्री कानजीस्वामी ने जलगाँव की ओर प्रस्थान किया। रात्रि को चीखली ग्राम में ठहरे और प्रात:काल जिनमंदिर में भगवान के दर्शन करके फाल्गुन शुक्ला ३ के प्रात:काल ही गुरुदेव जलगाँव नगर में पधारे।

जलगाँव में जिनबिम्ब वेदी-प्रतिष्ठा-महोत्सव

जलगाँव पधारने पर गुरुदेव का उल्लासपूर्वक भव्य-स्वागत किया गया। यहाँ करीब एक लाख के खर्च से शिखरयुक्त भव्य जिनमंदिर का निर्माण हुआ है, जिसमें जिनेन्द्र भगवंतों की वेदी-प्रतिष्ठा के मंगल-महोत्सव का प्रारंभ हुआ। दोपहर को प्रवचन के पश्चात् सेठश्री व्रजलाल मंगनलाल के सुहस्त से जैन झंडारोपण विधि हुई। श्री केशवलाल महीजीभाई के सुपुत्र श्री आनंदीलाल आदि बंधुओं ने प्रतिष्ठा-मंडप में जिनेन्द्र भगवान को विराजमान किया।

(वेदी प्रतिष्ठा के विस्तृत समाचार अगले अंक में दिये जाएँगे।)

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

मोक्ष का उपाय : भेदज्ञान

ज्ञान तो आत्मा का स्वरूप है, परंतु रागादि वह आत्मा का स्वरूप नहीं है; तथापि ज्ञान और राग के अंतर को अज्ञानी नहीं जानता; इसलिये ज्ञान और रागादि सब मानों एकमेक हों—इसप्रकार उन परभावों में तन्मयरूप से वर्तता है। ज्ञान तो स्वभावभूत है और रागादि परभावभूत हैं;—इसप्रकार दोनों की अत्यंत भिन्नता है। ज्ञान में रागादि ज्ञात हों, वहाँ अज्ञानी मैं-ज्ञान कर्ता और रागादि मेरा कर्म; इसप्रकार राग की क्रियारूप से परिणमित होता है, उसका नाम अज्ञानमय प्रवृत्ति है और वही बंध का कारण है। जब तक अज्ञानमय प्रवृत्ति है, तब तक जीव संसार में भटकता है। राग से भिन्न मैं तो ज्ञानमात्र हूँ; ज्ञानक्रिया में रागक्रिया नहीं है; और रागक्रिया में ज्ञानक्रिया नहीं है—ऐसी अत्यन्त भिन्नता जानकर जीव जब ज्ञानमात्रभावरूप परिणमित होता है, तब राग के अंश को भी वह अपने में नहीं मिलाता, इसलिए उसे कर्मबंधन भी नहीं होता और वह जीव कर्मों से छूटता है। इसप्रकार भेदज्ञान ही मोक्ष का उपाय है।

देखो भाई, जन्म-मरण से छूटना हो तो यह बात समझना ही होगी। आत्मा का अपना स्वरूप क्या है, उसे समझे बिना किसी प्रकार दु:ख से छुटकारा नहीं होता।

मोक्ष का कारण प्रज्ञा

[प्रज्ञा अर्थात् शुद्धात्मोन्मुख भगवती चेतना]

(समयसार, कलश १८१ के प्रवचनों से)

भगवती प्रज्ञा द्वारा भेदज्ञान कराकर मोक्षमार्ग खोलनेवाला यह आनंददायक कलश, जब-जब हम स्वामीजी के श्रीमुख से सुनते हैं, तब-तब ऐसी 'ज्ञान चेतना' के पुरुषार्थ की तीव्र प्रेरणा जागृत होती है।

अनादि से बंधन में बँधे आत्मा को किस तरह छुड़ाना ? छुड़ाने का साधन क्या ? वह विधि इस कलश में बताते हैं। भेदज्ञान के लिये यह अलौकिक श्लोक है। आत्मा को बंधन से छुड़ाने का साधन आत्मा में है, आत्मा से भिन्न अन्य कोई साधन नहीं है। आत्मा क्या और बंध क्या—उन दोनों के भिन्न लक्षण को पहिचानकर, जो चेतना आत्मस्वभाव की ओर झुकी, वह भगवती चेतना ही बंधन से छूटने का (अर्थात् मोक्ष का) साधन है। रागादि बंधनभाव तो आत्मस्वभाव से भिन्न हैं; वे कोई भी रागभाव आत्मा के मोक्ष का कारण नहीं होते। उन रागभावों को तो आत्मा से भिन्न करने का है। राग से भिन्न ऐसी जो चेतना (कि जो आत्मा का स्वलक्षण है), उसके द्वारा ही बंधन से भिन्न आत्मा अनुभव में आता है; इस तरह चेतनारूप भगवती प्रज्ञा ही मोक्ष का कारण है। जीव का अपने शुद्ध स्वरूप से परिणमन और ऐसा परिणमन होने से कर्म का संबंध छूट जाना, उसका नाम मोक्ष है। मोह-राग-द्वेषादि अशुद्ध परिणतिरूप परिणमन होना और कर्म का संबंध होना, उसका नाम बंध है। शुद्ध परिणमन अर्थात् शुद्धस्वरूप का अनुभव; जिस ज्ञान द्वारा ऐसा अनुभव हो, वह ज्ञान मोक्ष का साधन है। ऐसा अनुभव होने से शुद्ध परिणमन हुआ, अतः अशुद्ध परिणमन छूट गया और पुद्गल में कर्म अवस्था छूट गई—शुद्ध जीव अपने स्वरूप में रहा—उस दशा का नाम मोक्ष है—'मोक्ष कहा निज शुद्धता।'

ऐसे मोक्ष का उपाय क्या है ? मोक्ष, वह पूर्ण शुद्ध परिणमन है और उसका कारण भी शुद्धता ही है। अशुद्धता का कोई अंश भी मोक्ष का कारण नहीं होता। मोक्ष के साधन का बहुत सुंदर स्पष्टीकरण इस 'प्रज्ञाछैनी' के श्लोक में किया है।

तीक्ष्ण प्रज्ञाछैनी अर्थात् तीक्ष्ण ज्ञानचेतना, उग्र ज्ञानचेतना; उसे निपुण जीव अर्थात् भेदज्ञान

में अत्यंत प्रवीण जीव, सावधान होकर आत्मा और बंध के बीच में जो सूक्ष्म भेद है, उसमें इस तरह पटकता है—गिराता है कि शीघ्र ही दोनों अत्यंत भिन्न अनुभव में आते हैं। ज्ञानचेतना अंतर्मुख होकर अपने आत्मा को राग के बिना शुद्ध अनुभवती है। ऐसा अनुभव ही मोक्ष का साधन है। ज्ञान के साथ जो राग को मिलाये—उसे शुद्धता का अनुभव नहीं होता, भेदज्ञान नहीं होता, मोक्षमार्ग नहीं होता। शुद्ध परिणमन, वह राग से अत्यंत भिन्न है; सर्वथा रागरहित शुद्ध अनुभव ही मोक्ष का साधन है। राग में खड़े रहकर शुद्ध का अनुभव नहीं हो सकता।

साधकदशा के समय भी जितने रागादिभाव हैं, वे सर्व ज्ञानचेतना से भिन्न हैं। यह कोई जीव का शुद्ध परिणमन नहीं है। जीव का शुद्ध परिणमन तो, ज्ञानचेतनारूप और अनंत चतुष्टयरूप है; वह राग से सर्वथा भिन्न है। द्रव्य के स्वभाव की जाति का परिणमन है, उसे ही द्रव्य का शुद्ध परिणमन कहा है। रागादि अशुद्धता को द्रव्य का शुद्ध परिणमन नहीं कहते। इस तरह रागरूप परिणमन और ज्ञानरूप परिणमन की सर्वतया भिन्नता है। राग का एक भी अंश ज्ञान के परिणमन में नहीं है; और ज्ञान का एक भी अंश राग में नहीं है। राग, वह शुद्धात्मा का परिणमन ही नहीं है, तो फिर आत्मा की शुद्धता का साधन कैसे हो ?—अर्थात् नहीं हो सकता।

भैया ! तेरे मोक्ष का साधन तुझमें है, उसे तू पहिचान तो सही ! तेरी शुद्धता के ज्ञान बिना, तू किसको मोक्ष का साधन बनायेगा ? मोक्ष का साधन तो अपने में है। उसे जाने बिना, जीव अज्ञानभाव से शुभराग को मोक्ष का साधन मानकर उन बंधभावों का ही सेवन करता है, अत: मिथ्यात्व का ही सेवन करता है। राग से पार ऐसी निर्विकल्प अनुभूति मोक्ष का साधन है। वह निर्विकल्प अनुभूति वचन में नहीं आती; उस वीतराग परिणति की क्या बात ! अंतर्मुख हुआ स्वसंवेदन ज्ञान आत्मा को शुद्धतारूप परिणमन कराता है, और वही मोक्ष का कारण है। अकेले बाह्य का जानपना भी मोक्ष का कारण नहीं है तो वहाँ राग की तो बात ही क्या ? कैसा ज्ञान ?—तो कहते हैं कि वीतराग परिणतिरूप परिणत स्वसंवेदन ज्ञान, वही मोक्ष का कारण है।

शुद्ध परिणमन, वह मोक्षमार्ग है।

शुद्ध परिणमन उसे ही होता है कि जिसे शुद्धस्वरूप का अनुभव अवश्य हो। बिना शुद्धस्वरूप के अनुभव द्वारा तनिक भी शुद्ध परिणमन नहीं होता; शुद्ध अनुभव बिना चतुर्थ गुणस्थान भी नहीं होता। चतुर्थ गुणस्थान से ही शुद्धस्वरूप का अनुभव है, शुद्ध परिणमन है, मोक्षमार्ग है, उसे अंतरात्मा कहा है। चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धस्वरूप के अनुभव होने की जो ना

कहते हैं, उन्हें अनुभवदशा या अविरत सम्यग्दृष्टि—जो चतुर्थ गुणस्थान है, उसकी भी खबर नहीं है।

भैया! बिना शुद्ध परिणमन, राग और ज्ञान की भिन्नता नहीं जानी जाती; राग और ज्ञान की भिन्नता को यथार्थ जानते शुद्ध परिणमन हुए बिना नहीं रहता। राग और ज्ञान को यथार्थ भिन्न तभी जाने कि जब राग से भिन्न परिणमे, और ज्ञान स्वभाव की ओर झुके। इस तरह भेदज्ञान होते ही शुद्धतारूप परिणमन होता ही है। ऐसा परिणमन हुआ, तभी मोक्षमार्ग शुरु हुआ।

❀ ❀ ❀

भगवती चेतना कहो या प्रज्ञाछैनी कहो, उसके द्वारा बंधन से भिन्न शुद्धात्मा अनुभव में आता है। शुद्धात्मा चेतनामात्र वस्तु है, उसमें राग-द्वेष-मोहादि अशुद्धभाव एकरूप नहीं हैं, परंतु दोनों के बीच संधि है, लक्षणभेद है। एक क्षेत्र में होने पर भी दोनों एकस्वभावरूप नहीं हैं, दोनों के स्वभाव के बीच में बड़ा अंतर है। वह अंतर लक्ष्य में लेकर, प्रज्ञाछैनी ऐसी पड़ती है कि अशुद्धता को एक ओर छोड़कर शुद्धचेतना वस्तु में स्वयं एकाग्र होता है—इसका नाम भेदज्ञान, और यह मोक्षमार्ग है।

बंधन का स्वरूप, बंधन से छूटने का उपाय—इन सबका मात्र विचार किया करे, विकल्प किया करे, उससे कोई बंधन नहीं छूटते। बंध से भिन्न ऐसे शुद्धात्मा को जानकर, उसमें ज्ञान को एकाग्र करते बंधभाव छूट जाते हैं, उसके लिये उपयोग में सावधानी चाहिय। 'रभसात्' अर्थात् शीघ्रता से प्रज्ञाछैनी गिरती है—ऐसा कहकर पुरुषार्थ की तीव्रता बतलायी है। ऐसा भेदज्ञान करे, उस जीव को निपुण कहा है। बाकी बाह्य ज्ञान में निपुणता बताये और अंदर राग से भिन्न शुद्धात्मा का अनुभव करना यदि नहीं आया तो उसे निपुण नहीं कहा जाता, वह जड़ (मूर्ख) है, आत्मा को बंधन से छुड़ाने की विद्या उसे नहीं आती।

भैया! आत्मा का शुद्धस्वभाव, और अशुद्धतारूप बंध, वे दोनों एकरूप नहीं हुए हैं, परंतु बीच में लक्षणभेदरूप संधि है, अतः दोनों को भिन्न अनुभव कर सकते हैं; क्योंकि सूक्ष्म ज्ञानछैनी द्वारा उनको भिन्न किया जा सकता है। आत्मा और बंध दोनों ऐसे एकरूप नहीं हो गये हैं, कि बीच में ज्ञानछैनी न जा सके। दोनों के बीच का अंतर भेदज्ञान द्वारा जाना जा सकता है, भेदज्ञान द्वारा दोनों को भेदा जा सकता है।

जितने क्षेत्र में चेतनवस्तु है, उतने ही क्षेत्र में रागादि बंधभाव हैं, तो भी दोनों के बीच

भावभेदरूप (लक्षणभेदरूप) बड़ी दरार है। यह राग का स्वाद आकुलतारूप-दु:खरूप है, और ज्ञान का स्वाद शांत-सुखरूप है, इस तरह विवेक द्वारा दोनों के स्वाद की भिन्नता जानी जाती है। तीक्ष्ण प्रज्ञा द्वारा; उन दोनों को अत्यंत भिन्न जानकर, वही प्रज्ञा शुद्ध स्वरूप के भीतर जाकर उसे अनुभव में लेती है, और रागादि को भिन्न कर डालती है।

तीक्ष्ण प्रज्ञा-तीक्ष्ण ज्ञान, अर्थात् राग से न घिर जाये ऐसी चेतना; वह अंतर के चैतन्यस्वभाव में प्रवेश जाती है; अत्यंत सावधानी द्वारा—उपयोग की जागृति द्वारा अन्दर की सूक्ष्म संधि को भेदकर, एक ओर ज्ञानस्वरूप आत्मा, और अज्ञानरूप ऐसे बंधभाव, उनको सर्वथा भिन्न कर डालती है। बंधभाव के किसी अंश को ज्ञान में रहने नहीं देती, और ज्ञान के किसी अंश को बंधभाव में नहीं मिलाती—ऐसी भगवती चेतना, वह मोक्ष का साधन है।

वैसे रागादि अशुद्धभाव जीव की पर्याय में परिणमते हैं; जहाँ जीव है, वहीं रागादि हैं, इसलिये उनसे भिन्न ऐसे शुद्ध जीव का अनुभव सामान्य जीवों को कठिन है-अति सूक्ष्म है, तो भी निपुण पुरुष अंतर की सूक्ष्म ज्ञानचेतना द्वारा स्वभाव और विभाव के बीच भेद जानकर उनसे भिन्नता का अनुभव करते हैं। क्योंकि दोनों के बीच लक्षणभेद की दरार है। स्थूल ज्ञान से अज्ञानी को वह दरार दिखायी नहीं देती, परंतु ज्ञान की अंतर एकाग्रता द्वारा, उन दोनों के बीच की संधि को जानकर, ज्ञान अपने स्वभाव में एकाग्र होता है। एकाग्र होते ही दोनों स्पष्ट भिन्न अनुभव में आते हैं। ज्ञान का अनुभव हुआ; उस अनुभव में राग की सर्वथा नास्ति है। प्रथम ऐसी भिन्नता अनुभवने पर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है, बाद में सकल रागादि का तथा कर्म का क्षय होने से, बंध को सर्वथा छेदकर आत्मा मुक्त होता है। अत: प्रज्ञारूप ज्ञानचेतना, वह मोक्ष का पंथ है।

अंतर में ज्ञान और राग के बीच की संधि को पकड़ने के लिये उपयोग में बहुत ही सूक्ष्मता चाहिये। इन्द्रियाँ और मन दोनों से छूटकर अतीन्द्रिय उपयोग द्वारा राग से भिन्न आत्मा अनुभव में आता है। इसमें अंतर्मुख उपयोग का बहुत प्रयत्न है। देह-मन-वाणी तथा जड़कर्म—वे तो जीव से एक क्षेत्र में होने पर भी भिन्न प्रदेशवाले हैं, रूपी हैं, जड़ हैं, वे नये आते हैं, और जाते हैं—अत: वे तो जीव से भिन्न हैं—ऐसी प्रतीति विचार द्वारा उपजती है। परंतु अंतर में जीव-पर्याय के साथ एक प्रदेश में रहे हुए जो रागादि भाव हैं, उनसे भिन्न शुद्ध जीव का अनुभव कठिन है—कठिन होने पर भी सूक्ष्म प्रज्ञा द्वारा, उनके बीच स्वभावभेद जानकर

भिन्नता का अनुभव हो सकता है। कठिन है—परंतु अशक्य नहीं है, हो सके ऐसा है। और ऐसा अनुभव करनेवाली भगवती प्रज्ञा वही मोक्ष का साधन है, अनंत जीव ऐसा अनुभव करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।

प्रज्ञाछैनी द्वारा विचार करने से, अंतर में ऐसी प्रतीति होती है कि राग भिन्न और मैं भिन्न; बिना राग के आत्मलाभ संभव है। राग के अभाव में आत्मा का अभाव नहीं हो जाता, राग का अभाव होने पर भी आत्मा अपने चैतन्यस्वरूप में जीता है, अत: चेतनास्वरूप ही जीव है, राग -स्वरूप नहीं; ऐसा भेदज्ञान अत्यंत कठिन होने पर भी तीव्र प्रयत्न द्वारा हो सकता है। राग के काल में ही उससे भिन्न शुद्ध जीव का अनुभव ज्ञानचेतना द्वारा अवश्य होता है। ज्ञानचेतना अति सूक्ष्म है, चक्रवर्ती की तलवार की तीक्ष्ण धार की भाँति एक झटके में वह प्रज्ञाछैनी ज्ञान और राग के दो टुकड़े कर डालती है। ऐसा भेदज्ञान करने में प्रज्ञाछैनी को कितनी देर लगे ?—तो कहते हैं कि तत्क्षण एक समय में वह आत्मा और बंध को भिन्न कर डालती है। चेतना जहाँ अंतर में एकाग्र हुई कि उसी समय वह बंधभाव से भिन्न शुद्धात्मा को अनुभवती है। ऐसा भेदज्ञान निपुण पुरुष करते हैं, निपुण पुरुष अर्थात् आत्मानुभव में प्रवीण जीव; फिर भले वह पुरुष हो या स्त्री हो, स्वर्ग का देव हो या नरक का नारकी हो; आत्मा अनुभव करने में प्रवीण हैं, वे जीव निपुण हैं, मोक्ष को साधने की कला उन्हें आती है... उनके संसार का किनारा नजदीक आ गया है। ऐसा भेदज्ञान जीव को आनंद उपजाता है। भेदज्ञान होते ही आनंदरूप शुद्धात्मा अनुभव में आता है, और बंधभाव शुद्धस्वरूप से बाहर भिन्न रह जाते हैं। यही मोक्षमार्ग है।

वाह ! संत ऐसा भेदज्ञान कराके कहते हैं कि भैया, तू अंतर में ऐसा भेदज्ञान कर। यह भेदज्ञान तुझे महानंद उपजावेगा और मोक्ष को प्राप्त करायेगा। भेदज्ञान के लिये यह अवसर है। अनादि के बंधन से छूटकर सुखी होने के लिये यह समय है, तू इस समय को मत चूकना।

गुरुदेव परम वात्सल्यपूर्वक प्रेरणा से कहते हैं कि हे भाई ! अभी आत्मज्ञान के लिये यह अवसर है... तू यह बात लक्ष्य में तो ले। बड़े भाग्य से यह अवसर मिला है... उसमें करने का तो सिर्फ एक यही है। अंतर में जरा धैर्य रखकर, बाहर के कार्यों का रस छोड़कर विचार करेगा तो तुझे समझ में आयेगा कि आत्मा का स्वभाव और राग, दोनों एक होकर रहने योग्य नहीं है, परंतु भिन्न होनेयोग्य हैं। दोनों का स्वभाव भिन्न है, अत: भिन्न पड़ जाते हैं। भैया ! समय-समय करते काल तो निकल जाता है, उसमें यदि तू तेरे स्वभाव के सन्मुख नहीं हुआ तो

तूने किया क्या ? जो करनेयोग्य कार्य है, वह तो यही है। चाहे जितने प्रयत्न द्वारा भी विकार से भिन्न चेतन का अनुभव करना—वही करने का है।

तेरी चेतना राग को चेतने में (अनुभवने में) रुकती है, उसके बदले चेतना अंतर में ढलकर शुद्धात्मा को चेते-अनुभवे कि उस समय आत्मा और बंध की भिन्नता का अनुभव होता है-एक समय में ही ऐसा उपयोग पलट जाता है।

दुनिया के जीव दुनिया के बाह्य-कार्यों में अपनी-अपनी बुद्धिमानी और प्रवीणता दिखाते हैं... तो हे भाई! तू तेरे अनुभव में प्रवीण बन... उसमें उद्यमी बन, अपनी चेतना को राग से भिन्न करके शुद्धस्वरूप में लगा... उस ही क्षण तुझे परम आनंद होगा। भेदज्ञान में निपुण जीव आनंदसहित अपने शुद्धात्मा को अनुभवते हैं-ऐसा अनुभव, वह मोक्षमार्ग है, वही करनेयोग्य कार्य है।

अहा! सावधान होकर आत्मा के विचार का उद्यम करे, तो उसमें नींद उड़ जाये—ऐसा है। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है; वह तो आत्मा और बंध की भिन्नता के विचार में जागृत है—उत्साही है, उसमें प्रमादी नहीं बनता। मुझे मेरे हित को साधना है, मुझे मेरा आत्मा प्राप्त करना है, मुझे मेरे आत्मा को भव बंधन से छुड़ाना है—इसप्रकार अत्यंत सावधान होकर, महान उद्यमपूर्वक हे जीव! अपने आत्मा को बंधन से भिन्न अनुभव में ले... अनादिकालीन निद्रा त्यागकर जागृत हो।

आत्मा के अनुभव के लिये सावधान बन... शूरवीर बन... जगत की प्रतिकूलता को देखकर कायर मत बन... प्रतिकूलता के सामने न देख, शुद्धात्मा के आनंद के सामने देख। शूरवीर होकर—उद्यमी होकर आनंद का अनुभव कर। 'हरि का मार्ग है शूरों का...' वे प्रतिकूलता में या पुण्य की मिठास में कहीं भी नहीं अटकते, उन्हें एक अपने आत्मार्थ का ही काम है। भेदज्ञान द्वारा आत्मा को बंधन से पूरी तरह से भिन्न अनुभवते हैं। ऐसा अनुभव करने का यह अवसर है। भैया! तेरी चेतना को, अंतर में एकाग्र करके त्रिकाली चैतन्यप्रवाहरूप आत्मा में शांति से मग्न कर... और रागादि सर्व भावों को चेतन से भिन्न अज्ञानरूप जान। इस तरह सर्व रूप से भेदज्ञान करके, एकरूप शुद्ध आत्मा को साध मोक्ष को साधने का यह अवसर है।

अहो! वीतराग का मार्ग... जगत से भिन्न है। जगत के भाग्य हैं कि संतों ने ऐसा मार्ग प्रसिद्ध किया है। ऐसा मार्ग प्राप्त करके हे जीव! भेदज्ञान द्वारा शुद्धात्मा को अनुभव में लेकर तू मोक्षपंथ पर आ।●●

आत्मा का परमार्थ स्वरूप और उसकी पहिचान

(प्रवचनसार, गाथा १७२ के प्रवचन में से कुछ सारांश)

देहादि सर्व पुद्गल-रचना है। वह जीव नहीं है। जीव अपने असाधारण लक्षण द्वारा उस देह से भिन्न ही है। वह लक्षण क्या है? कि जिसके द्वारा जीव का परद्रव्यों से भिन्न वास्तविक स्वरूप पहिचाना जाए एवं भेदज्ञान होते ही वीतरागी आनंद आये? उसका यह वर्णन है।

अस्पर्श, अरसपना आदि बोलों द्वारा जीव का पुद्गल से भिन्नपना समझ में आता है, और अपने स्वभावाश्रित ऐसे चेतनागुण द्वारा आत्मा समस्त अन्य पदार्थों से भिन्न पहिचाना जाता है और आस्रवतत्त्व से भी जीवतत्त्व भिन्न है, ऐसा अनुभव होता है।

आत्मा 'अलिंगग्रहण' है—ऐसा कहकर उसमें से बीस अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने निकालकर अलौकिक आत्मस्वरूप समझाया है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है... कैसा ज्ञान? अतीन्द्रिय ज्ञान; यह अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा ऐसा नहीं है कि इन्द्रियादि द्वारा जाने। पाँच इन्द्रियोंरूपी लिंग द्वारा जिसका ग्रहण नहीं है, इन्द्रियों द्वारा जो जानता नहीं है, वह अलिंगग्रहण है। अकेला इन्द्रियों की ओर का बोध सच्चा बोध नहीं है, और वह आत्मा का सच्चा चिह्न नहीं है। इन्द्रियज्ञानरूप व्यवहार होने पर भी वह यथार्थ आत्मा नहीं है। आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है।

अतीन्द्रिय ज्ञान कहो या सर्वज्ञता कहो। 'सर्व' ऐसा जो शब्द है, वह शब्दसमय; उसके वाच्यरूप सर्व पदार्थ हैं, वह अर्थसमय, और उसका जाननेवाला सर्वज्ञतारूप ज्ञान, वह ज्ञानसमय; इसप्रकार तीन समय सत् हैं, उस सत् की प्ररूपणा है। जो हो उसकी प्ररूपणा और ज्ञान होता है। उसे 'सत्पद प्ररूपणा' कही जाती है। ज्ञान में 'सर्वज्ञता' को बिना स्वीकारे, सर्व पदार्थों की सत्ता का यथार्थ स्वीकार नहीं हो सकता।

इन्द्रिय से भिन्न आत्मा कब जाना कहलाये? कि स्वयं अतीन्द्रिय होकर जाने तब। इन्द्रियों की ओर ही रहकर जाना करे, ऐसा नहीं, किन्तु अतीन्द्रिय होकर जाने-ऐसा आत्मा है।

आत्मा की पहिचान कैसे हो, उसका यह वर्णन है। जिस स्वरूप से आत्मा को पहिचानते ही सम्यग्दर्शन हो—उसकी यह बात है। इन्द्रियाँ तो आत्मा से भिन्न ही हैं, उन

इन्द्रियों की ओर उन्मुख ज्ञान में ऐसी शक्ति नहीं है कि अतीन्द्रिय पदार्थों को (आकाश आदि को) जान सके, अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा में ही ऐसी शक्ति है कि सर्व पदार्थों को जाने। ऐसी अतीन्द्रिय शक्तिवाला आत्मा है।

प्रश्नः—अभी तो इन्द्रियों द्वारा ही जानने में आता है।

उत्तरः—नहीं, इन्द्रियों द्वारा तो आत्मा कभी भी जानता नहीं है, परंतु इन्द्रियों की ओर का ज्ञान, वह भी यथार्थ आत्मा नहीं है। इन्द्रियज्ञान को ही जो देखता है, वह यथार्थ आत्मा को नहीं देख सकता। इन्द्रियातीत ज्ञान को देखे, वही सच्चे आत्मा का अनुभव कर सकता है। इन्द्रियाँ अर्थात् लिंग, उसके द्वारा ग्रहे अर्थात् जाने, ऐसा आत्मस्वभाव नहीं है। किंतु उस लिंग के बिना ही जाने, ऐसा अलिंगग्रहण आत्मा है... इस भाँति आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमय है—ऐसा अलिंगग्रहण का अर्थ समझ में आता है, अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानमय भाव प्राप्त होता है, अनुभव में आता है।

आत्मा स्वयं कर्ता होकर इन्द्रियज्ञान द्वारा जाने, ऐसा नहीं है अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानमय है—ऐसा प्रथम अर्थ में कहा।

अब, दूसरे जीवों को इन्द्रियज्ञान द्वारा जानने में आये अर्थात् इन्द्रियप्रत्यय हो जाये, ऐसा आत्मा नहीं है। अतीन्द्रियरूप परिणत ऐसे देव-गुरु के आत्मा को इन्द्रियज्ञान द्वारा कोई भी जान ले, ऐसा नहीं चलता। इन्द्रियज्ञान द्वारा ऐसा मान ले कि मैंने अरिहंतदेव तथा ज्ञानी को पहिचान लिया—तो वह पहिचान यथार्थ नहीं है।

❀ आत्मा इन्द्रियों द्वारा जानता नहीं है,

❀ आत्मा इन्द्रियों द्वारा जाना नहीं जाता।

— इसप्रकार दो बोल पूरे हुए।

अहो! अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसको पहिचानने की यह रीत कही जा रही है—उसका असाधारण स्वरूप कहा जाता है।

प्रत्यक्षस्वरूप आत्मा है, उसके सन्मुख पर्याय हुई, वह भी प्रत्यक्ष हो गई है—अतीन्द्रिय हो गई है, उसके द्वारा आत्मा पकड़ा जाता है अर्थात् अनुभव में आता है। चौथे गुणस्थान में भी आत्मा का अनुभव करनेवाला ज्ञान प्रत्यक्ष एवं अतीन्द्रिय हुआ है। आत्मा के अनुभव में गई पर्याय स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हो जाती है, और उस प्रत्यक्ष द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष होता

है। बिना उसके अकेले इन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा नहीं जाना जाता।

जिस तरह धुएँ से अग्नि का अनुमान हो सकता है, उसीप्रकार आत्मा का अनुमान कोई इन्द्रियगम्य चिह्न द्वारा नहीं हो सकता है। 'ऐसी भाषा है, अतः यह ज्ञानी है'—ऐसा सत्यार्थ अनुमान नहीं हो सकता। इन्द्रियप्रत्यक्ष किसी वस्तु द्वारा अनुमान करके अतीन्द्रिय आत्मा को जाना जाये—ऐसा नहीं है; किंतु वह तो स्वानुभवप्रत्यक्षपूर्वक के अनुमान से जाना जाये, ऐसा है। प्रत्यक्षपनेरूप निश्चय बिना व्यवहार कुछ भी काम नहीं कर सकता। अनुमान द्वारा आत्मा जरूर जाना जाता है—परंतु कैसा अनुमान? इन्द्रियप्रत्यक्षवाला अनुमान नहीं परंतु आत्मप्रत्यक्षवाला अनुमान आत्मा का निर्णय कर सकता है। आँखें भगवान के सामने स्थिर हो गईं, अतः वह धर्मात्मा है—ऐसे अनुमान द्वारा धर्मी की पहिचान नहीं हो सकती। अकेला इन्द्रियज्ञान तो निकाल दिया किंतु उसके साथ वाले अनुमान को भी निकाल दिया।

जातिस्मरणज्ञान में ऐसी शक्ति है कि बाह्य के इन्द्रियगम्य चिह्न सब बदल जाने पर भी, ज्ञान में ऐसा स्पष्ट ख्याल आ जाता है कि यह अमुक आत्मा है कि जो पूर्व भव में मेरे साथ संबंधवाला था। जैसे कि ऋषभदेव भगवान आठवें भव में वज्रजंघ राजा थे; एवं श्रीमती के साथ मुनियों को आहारदान दिया था, बाद में उस प्रसंग को तो असंख्य वर्ष बीत चुके, सात भव पलट गये, देहादि सामग्री बिल्कुल पलट गई... तथापि जब ऋषभेदव प्रभु मुनिदशा में विचरते थे, तब श्रेयांसराजा उनको देखते ही जातिस्मरण की निर्मलता के बल द्वारा जान लेते हैं कि यह ऋषभेदव का जीव ही पूर्व में असंख्य वर्ष पहले आठवें भव में वज्रजंघ राजा था, और मैं श्रीमती नामक उनकी पत्नी था। उस समय हमने विधिपूर्वक मुनिवरों को आहारदान दिया था, उस पर से आहारदान की विधि जानकर श्रेयांसकुमार ने ऋषभ मुनिराज को पड़गाहन करके विधिपूर्वक इस चौबीसी में भरतक्षेत्र में सर्वप्रथम आहारदान दिया था।

देखो तो सही, जातिस्मरणज्ञान की भी कितनी शक्ति! बिना इन्द्रियगम्य चिह्न के इतना जान लिया कि यही आत्मा पूर्व में वज्रजंघ दशा में था—उसमें किंचित् भी शंका नहीं होती, तो फिर अतीन्द्रिय होकर आत्मा को जो स्वज्ञेय बनाये, उस ज्ञान की कितनी शक्ति? वह तो मोक्षमार्ग का साधक हुआ... केवलज्ञान की जाति का हो गया।

शुद्धात्मा अकेला अनुमान का विषय नहीं है। प्रत्यक्षपूर्वक का अनुमान हो, वही सच्चा अनुमान है। अपने आत्मा को प्रत्यक्ष किये बिना, दूसरे आत्मा का अनुमान करने जाए तो वह

यथार्थ नहीं होता, अपने आत्मा को स्वसंवेदनप्रत्यक्ष करे, तभी अरिहंत और सिद्ध की सच्ची पहिचान होती है, अकेला परलक्ष्यी अनुमान सच्चा नहीं है।

अहो, ज्ञानी का आत्मा तो राग से भिन्न ज्ञानपरिणतिरूप परिणमित हो रहा है। जिसे अपने में राग और ज्ञान की भिन्नता लक्ष्य में आये, वही ज्ञानी को सच्चे स्वरूप से पहिचान सकेगा और उसे ही ज्ञानी की पहिचान का परमार्थ लाभ प्राप्त हो सकेगा, अकेले ऊपर-ऊपर से ज्ञानी को पहिचाने, उससे सच्चा फल नहीं आता। अनंत बार जीव को ज्ञानी तो मिले परंतु ज्ञानी के आत्मा को ज्ञानीरूप से नहीं जाना, राग और देह पर दृष्टि रखकर ज्ञानी को भी उसी दृष्टि से देखा; परंतु राग और देह से पार ऐसे चैतन्यभाव की दृष्टि से ज्ञानी को नहीं पहिचाना, अतः उसने ज्ञानी की सच्ची उपासना नहीं की।

अनुमानरूप लिंग द्वारा नहीं परंतु सीधे अपने स्वभाव द्वारा जानने का जिसका स्वभाव है—ऐसा आत्मा है। अर्थात् आत्मा प्रत्यक्ष जाननेवाला है। पुण्य-पाप द्वारा, इन्द्रियों द्वारा आत्मा के आनंद का वेदन नहीं होता, परंतु अंतर्मुख स्वसंवेदन द्वारा ही स्वयं अपने आनंद का वेदन करनेवाला है। अंतर को अनुभवनेवाला जो प्रत्यक्ष अंश है, वह आत्मा का स्वभाव है, सहजभाव, वह आत्मस्वभावरूप है। आत्मा आत्मभाव द्वारा ही जाना जाता है, परंतु आत्मा परभावों द्वारा नहीं जाना जाता।

अपने में जो राग से लाभ मानते हैं, देह की क्रिया को अपनी मानते हैं, वे सामनेवाले जीवों में भी राग तथा देह की क्रिया को ही देखते हैं, अतः उनका अनुमान भी सच्चा नहीं होता; आत्मा का सच्चा स्वरूप उनके अनुमान में नहीं आता। शरीरवाला आत्मा नहीं, आत्मा तो बिना रूपादि के अशरीरी है। रागवाला भी आत्मा नहीं, तथा इन्द्रियज्ञान व मन के आलंबन वाला अकेला परलक्ष्यी अनुमान ज्ञान, वह भी परमार्थ से आत्मा नहीं। आत्मा तो अकेला चैतन्यमय अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है। अतीन्द्रिय कहो या प्रत्यक्ष कहो, ऐसे ज्ञान द्वारा जानने का ही आत्मा का स्वभाव है।

लिंग अर्थात् आत्मा का चैतन्य-चिह्न; आत्मा उपयोगलक्षणवाला है, वह ज्ञेय पदार्थों के आलंबन द्वारा नहीं जानता, परंतु स्वाधीनरूप से जाननेवाला है। इन्द्रियों के अवलंबनवाला ज्ञान तो आत्मा का चिह्न नहीं, और मात्र बाह्य अवलंबनवाला ज्ञान भी आत्मा का चिह्न नहीं है। परावलंबीभाव द्वारा आत्मा नहीं जाना जाता। अपने आनंदस्वभाव का वेदन

पर के अवलंबनवाला नहीं है। पर के अवलंबन से ज्ञान भी नहीं और पर के अवलंबन से सुख भी नहीं।

परावलंबीभावरूप व्यवहार, वह परमार्थ आत्मा नहीं। मूर्ति आदि व्यवहार है सही, परंतु उस ज्ञेय का अवलंबन तो शुभराग है, आत्मा का स्वभाव उस परावलंबी भाव रहित है। व्यवहार कैसा है, और उसकी कितनी मर्यादा है ? उस सबका विवेक करना चाहिये।

परिपूर्ण सर्वज्ञशक्तिवाला आत्मा, वह परज्ञेय के अवलंबन से खंड-खंड जाननेवाला नहीं, परंतु अपने स्वभाव का ही अवलंबन करके जाननेवाला है। उपयोग रागरूप होकर राग को नहीं जानता। परंतु उपयोग उपयोगरूप रहकर राग को जानता है। उपयोग कभी अनुपयोगरूप नहीं होता। जैसे नमक गलकर खारे पानीरूप होता देखने में आता है, उसमें कुछ विरोध नहीं, परंतु वैसे ही उपयोगरूप आत्मा पलटकर कभी जड़रूप हो जाये—ऐसा नहीं होता, क्योंकि उपयोग तथा जड़ की विरुद्धता है। उपयोगरूप आत्मा स्वयं उस राग का अवलंबन करके जाननेरूप स्वभाववाला नहीं है। अहो ! जगत के अवलंबन बिना जगत को जाननेवाला आत्मा है। मात्र अपने ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करके जाननेवाला आत्मा है। आचार्यदेव कहते हैं कि हे भव्य ! ऐसे आत्मा को तू जान ! प्रत्यक्ष ज्ञानपूर्वक ऐसी आत्मप्रतीति वह सम्यग्दर्शन है।

मोक्षमार्ग में साथ में राग हो, व्यवहार हो, परंतु उसके अवलंबन से मोक्षमार्ग टिका नहीं है; वह भिन्न ज्ञेयरूप है। उसके अवलंबन का माहात्म्य धर्मी को नहीं रहा है... प्रतिक्षण आत्मस्वभाव का अवलंबन लेता हुआ धर्मी जीव मोक्षमार्ग की निर्मलतारूप से परिणमित होता है, उसी को 'आत्मा' कहा जाता है। चैतन्यस्वभाव का ही अनुसरण करनेवाला उपयोग, वह आत्मा का चिह्न है।

चैतन्यचिह्नरूप जो लिंग अर्थात् उपयोग, उसे आत्मा कहीं बाह्य से ग्रहण नहीं करता, स्वयंमेव ही उपयोगरूप होकर परिणमित होता है। राग में से या शब्दों में से ज्ञान आये, ऐसा नहीं है; तीक्ष्ण तलवार जैसी सूक्ष्म ज्ञानदृष्टि द्वारा आत्मा पकड़ में आता है। भाई, परवस्तु का उपयोग तू नहीं कर सकता; तू स्वयं उपयोगस्वरूप है, उसका उपयोग कर। पर में से ज्ञान या सुख लेना चाहेगा तो वह नहीं मिलेगा... अंतर में ज्ञान-सुख का समुद्र भरा है, उसमें से ज्ञान-सुख की अखण्ड धारा बहती रहती है। उपयोग को निजस्वरूप में लगाकर आत्मा स्वयमेव

आनंदरूप परिणमित होता है। आनंदरूप परिणमित होने में आत्मा को किसी बाह्यवस्तु का अवलंबन नहीं है; उपयोग का उपयोगस्वरूप में लगना ही परम आनंद है। पहले उपयोग का और परभाव का भेदज्ञान करके परभाव से भिन्न होकर निजभाव में आया, वहाँ आत्मा से ही आनंद का सागर उल्लसित होता है।

परभावों से भेदज्ञान करके आत्मा का उपयोग जहाँ अंतरोन्मुख हुआ, वहाँ उसे रोक सके ऐसी कोई वस्तु जगत में नहीं है। जो परिणति द्रव्यस्वभावोन्मुख हुई, वह अब उससे विमुख नहीं हो सकती... स्वभाव में जो पर्याय तल्लीन हुई, उसका अब घात नहीं हो सकता, वह पर्याय जीवंत हो गई... कभी मरेगी नहीं।—ऐसे उपयोगमय आत्मा, वह परमार्थ आत्मा है। उसमें रागरूपी मैल नहीं है।

उपरागरहित उपयोग, वह आत्मा है; अंतर्मुख उपयोग—कि जिसमें राग का मैल नहीं है, कर्म का आवरण नहीं है—ऐसा जिसका स्वभाव है, वह आत्मा है। शुभाशुभराग में लगा हुआ उपयोग, वह वास्तव में आत्मा नहीं है। शुद्ध या अशुद्ध वह आत्मा का लक्षण नहीं है। ऐसा रागरहित उपयोग (शुद्धोपयोग) चौथे गुणस्थान में भी सम्यग्दृष्टि को होता है। यदि चौथे गुणस्थान में ऐसा शुद्धोपयोग सर्वथा न माने, तथा मात्र शुभाशुभ उपयोग का ही होना माने तो उसे सम्यग्दर्शन-भूमिका की खबर नहीं है। स्वसन्मुख उपयोगरूप से शुद्धोपयोग निरंतर भले ही न रहे, परंतु सम्यक्त्व की उत्पत्ति के काल में तो स्वानुभूति में शुद्धोपयोग अवश्य होता है... और पश्चात् उपयोग कहीं अन्यत्र लगे, उस समय भी अनंतानुबंधी के अभावरूप शुद्धपरिणति तो सम्यग्दृष्टि को निरंतर वर्तती ही है; उस शुद्धपरिणति को भी शुद्धोपयोग कहा जाता है। राग के साथ एकमेकता रहित जो निर्मल उपयोग वही शुद्ध आत्मा का लक्षण है; उस लक्षण द्वारा आत्मा के परमार्थ स्वरूप की प्रतीति होती है—अनुभव होता है।

जिसप्रकार समुद्र में डूबा हुआ रत्न फिर हाथ नहीं आता, उसीप्रकार यह मनुष्य-पर्याय, श्रावक-कुल और जिनवाणी के श्रवण का सुयोग प्राप्त करके भी यदि आत्मकल्याण नहीं किया, तो समुद्र में डूबे हुए रत्न की भाँति फिर इनका मिलना दुर्लभ है। इसलिये यह अपूर्व अवसर न गँवाकर अवश्य आत्मकल्याण कर लेना चाहिये।

वैराग्य-सम्बोधन

चैतन्य-आत्मा को उसके ज्ञानशरीर से पृथक् करने में कोई समर्थ नहीं है। प्रतिकूल प्रसंगों से घबराकर दीनहीन हो जाना आत्मा को शोभा नहीं देता।

❁ धैर्यवान जीव को किसी भी अप्रिय-अनिष्ट घटना के समय वैराग्य का वातावरण बनाकर सच्ची आत्मशांति प्राप्त करने की ओर आत्मा को ले जाना चाहिये। संसार को खूब देख लिया, किंतु सार कुछ नहीं निकला। तो जिसमें सार हो, ऐसा कुछ करना चाहिये। जहाँ अपना शरीर तथा पुत्र भी आत्मा के नहीं, वहाँ अन्य कौन आत्मा का है—कि जिसके लिये जीवन का अमूल्य समय दे दिया जाये?

❁ अहो, ऐसा महान जो अपना जैनधर्म, वह हमें प्रतिक्षण परम वीतरागता के लिये प्रेरित करता है। आत्मा में अपार शक्ति है—ज्ञान की-वैराग्य की-आनंद की अपार शक्ति आत्मा में विद्यमान है; क्षणिक छोटे-छोटे प्रसंगों से घबराकर दीन हो जाना आत्मा को शोभा नहीं देता।

❁ ज्ञानी संत तो ललकारकर कहते हैं कि—अरे वीर! तू जाग! उठ! और अपनी प्रभुता को संभाल! तेरा चैतन्य जीवन कहीं चला नहीं गया; जीवित-जागृत चैतन्यभगवान तू है, तीन लोक की प्रतिकूलताओं का ढेर भी आत्मा को उसके ज्ञानशरीर से पृथक् करने में समर्थ नहीं। घबरा मत, निराश मत हो!

❁ वीतरागता की भावना के द्वारा ही भव का नाश होता है। ऐसी भावना की वृद्धि के हेतु संत पुरुषों के समीप निवास करना ही उत्तम है; क्योंकि वहाँ के वातावरण में वीतरागता का ही मंथन होता है। संसार में तो मोह का ही मंथन है, सत्संग द्वारा मन से संसार के विचार छूटकर किसी भिन्न प्रकार की अपूर्व शांति का अनुभव होता है। संसार से संतप्त आत्मा को सच्चे वैराग्य-रस से सींचकर ज्ञानियों के मार्ग पर चलना—यही इस संसार से छूटने का मार्ग है। संतों ने कहा है कि—

'सुख की सहेली है अकेली उदासीनता'

●●

आत्मा की ऊर्ध्वता

अद्भुत ज्ञानवैभववान आत्मा त्रिलोक का सार है। सर्व पदार्थों में आत्मा की ऊर्ध्वता है, क्योंकि आत्मा न हो तो जगत को जाने कौन ? जगत है—ऐसा उसके अस्तित्व का निर्णय आत्मा के अस्तित्व में होता है। जगत का ज्ञाता, ऐसा जो ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसके अस्तित्व का स्वीकार किये बिना जगत के किसी पदार्थ के अस्तित्व का निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये सर्व पदार्थों में आत्मा की ऊर्ध्वता है।

पूज्य श्री कानजीस्वामी का विहार-कार्यक्रम

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मंगल-विहार करते हुए तारीख १-४-७० को राजकोट पधारे हैं, जहाँ हजारों नर-नारी प्रतिदिन उनकी आध्यात्मिक अमृतवाणी का लाभ ले रहे हैं। पूज्य स्वामीजी तारीख १५-४-७० तक राजकोट रहेंगे। उसके बाद का संक्षिप्त कार्यक्रम निम्नानुसार है:—मोरबी तारीख १६-१७, वांकानेर तारीख १८-१९, लाठी तारीख २०-२१, सावरकुंडला तारीख २२ से २५, कानातलाव तारीख २६ से २९, लाठी तारीख ३०-४-७०, भावनगर तारीख १-५-७० से ८-५-७० तक रहेंगे जहाँ जिनेन्द्र पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव होगा एवं पूज्य स्वामीजी की ८१वीं जन्म-जयन्ती बड़ी धामधूम से मनायी जायेगी।

तारीख ९-५-७० को सवेरे पूज्य स्वामीजी सोनगढ़ पधारेंगे।

—: विविध समाचार :—

विदिशा में सिद्धचक्र मण्डल विधान एवं धार्मिक शिक्षण-शिविर

विदिशा (म.प्र.) में श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर में धर्मप्रेमी भाई सागरमल राजेन्द्रकुमार जैन क्लाथ मर्चेंट की ओर से श्री सिद्धचक्र मंडल विधान एवं आध्यात्मिक प्रौढ़ शिक्षण शिविर का मंगल आयोजन दिनांक १३-३-७० से २२-३-७० तक किया गया था।

विदिशा जैन समाज ने बड़ी संख्या में अपूर्व रुचि से भाग लिया। शिक्षण एवं शंका-समाधान श्री पंडित चिमनभाई द्वारा होता था, तथा पंडित श्री धन्नालालजी ग्वालियर वालों का आध्यात्मिक प्रवचन होता था। इस अवसर पर बाहर से पधारे कलाकारों द्वारा धार्मिक नृत्य संगीत एवं संवादों का भी आयोजन हुआ था, जिससे खूब-खूब धर्म-प्रभावना हुई। इसमें जैन संगीत कला मंडल ग्वालियर; श्री मधुकरजी भोपालवाले एवं श्री बाबूलालजी अशोकनगरवालों ने सराहनीय सहयोग प्रदान किया। इस अवसर पर श्री ब्रह्मचारी राजारामजी, ब्रह्मचारी भँवरलालजी, ब्रह्मचारी घासीरामजी, ब्रह्मचारी पंडित बाबूलालजी अशोकनगर उपस्थित थे। अंत में विशाल जलयात्रा महोत्सव के साथ यह विशाल कार्यक्रम सानंद संपन्न हुआ।

मंत्री
ज्ञानचंद जैन

विदिशा (म.प्र.)—श्री जवाहरलालजी द्वारा लश्कर में चि० ऋषभकुमार के विवाहोपलक्ष्य में पांडे श्री राजमल्लजी कृत 'समयसार कलश-टीका' की ४०० प्रतियाँ साधर्मियों में वितरित की गईं। यह प्रथा सुंदर एवं अनुकरणीय है। —ज्ञानचंद जैन

बार्सी (महाराष्ट्र)—तारीख २८-२-७० ब्रह्मचारी दीपचंदजी पूज्य श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों के टेपरिकार्डिंग द्वारा महाराष्ट्र में धार्मिक प्रचार कर रहे हैं। जगह-जगह से आमंत्रण मिलते हैं। १५ दिनों के प्रवास में पिपलनेर, निमगाँव, टेंभुर्णी, इन्द्रापुर में अच्छी धर्म प्रभावना हुई और ८ दिनों में दौड़ती भेंट-दहिगाँव, नातेपुते, फलटन, बारामती, नीरा इन नगरों को दे चुके हैं।

टेंभुर्णी में अच्छी धर्म प्रभावना हुई। लोगों ने अच्छा सहयोग दिया, सबको स्वाध्याय की प्रेरणा मिली, स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई। विशेष आनंद की बात यह है कि टेंभुर्णी इन्द्रापुर और पिपलनेर में जैन पाठशाला की स्थापना हो गई। बार्सी में भी लोगों में सर्वज्ञ वीतराग कथित धर्म समझने की भावना जागृत हुई है। बार्सी से बाहुबली होकर शिरपुर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में पहुँचे।

[श्री टोडरमल स्मारक भवन द्वारा संचालित]

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४ (राज०)

प्रशिक्षण-शिविर

महोदय,

गत वर्ष की भाँति श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड द्वारा संचालित धार्मिक प्रशिक्षण-शिविर इस वर्ष विदिशा समाज व मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु-मंडल के आमंत्रण पर मध्यप्रदेश के **विदिशा नगर में दिनांक २ जून से २१ जून १९७० तक होने जा रहा है,** जिसमें बालबोध पाठमालाओं और वीतराग विज्ञान पाठमालाओं की शिक्षण-विधि में अध्यापक बंधुओं को प्रशिक्षित किया जावेगा।

बालबोध-प्रशिक्षण में कोई भी धर्माध्यापक / धर्माध्यापिका शामिल हो सकेंगे, किंतु उन्हें बालबोध पाठमालाओं का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है तथा प्रवेशिका प्रशिक्षण में वे ही अध्यापक / अध्यापिकाएँ शामिल हों सकेंगे जिन्हें वीतराग विज्ञान पाठमालाओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त हो तथा जो गत वर्ष बालबोध-प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हों।

अत: निवेदन है कि आपके यहाँ से प्रशिक्षण हेतु आनेवाले धर्माध्यापकों एवं धर्माध्यापिकाओं की सूची शीघ्रातिशीघ्र हमें अवश्य प्राप्त हो जानी चाहिये।

ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था विदिशा समाज की ओर से है। अध्यापकों का मार्ग-व्यय आपकी संस्था को अथवा स्थानीय मुमुक्षु-मंडलों को वहन करना चाहिये।

हमारा कार्यालय २८ मई से २१ जून तक विदिशा रहेगा। अत: २५ मई के बाद किया जानेवाला पत्र-व्यवहार श्री पंडित रतनचन्दजी शास्त्री, खरीफाटक रोड, विदिशा (म.प्र.) के पते पर किया जाना चाहिये।

विदिशा प्रशिक्षण-शिविर के आयोजन अवसर पर श्रीमद् पंडित बाबूभाई फतेपुरवालों के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है एवं श्रीमान विद्वद्वर्य पंडित खेमचंदजीभाई सोनगढ़ के पधारने की भी पूरी-पूरी संभावना है।

शीतकालीन परीक्षाओं का परीक्षा-परिणाम सभी संबंधित संस्थाओं को भेज चुके हैं।

अभी तक जिन्हें प्राप्त न हुए हों, वे अविलंब कार्यालय को लिखें। हमारी परीक्षाओं का रिजल्ट 'जैन संदेश' साप्ताहिक, चौरासी, मथुरा में प्रकाशित होता है। कृपया उसके ग्राहक अवश्य ही बनें।

जो भी संस्थाएँ ग्रीष्मकालीन परीक्षा में सम्मिलित होना चाहें, वे हर हालत में ३० अप्रेल के पूर्व फार्म भरकर जयपुर कार्यालय को भेज दें तथा लेट फीस सहित आनेवाले फार्म भी १५ मई के बाद स्वीकार नहीं किए जा सकेंगे।

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की ग्रीष्मकालीन परीक्षाएँ १७ से १८ जनू को होंगी, जिनका कार्यक्रम निम्नानुसार है: !

दिनांक	—	**नाम पुस्तक**
१७-६-७०	—	बालबोध पाठमाला, भाग-१
		बालबोध पाठमाला, भाग-३
		वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग-१
		वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग-३
१८-६-७०	—	बालबोध पाठमाला, भाग-२
		वीतराग विज्ञान पाठमाला, भाग-२
		बालबोध प्रशिक्षण-परीक्षा एवं प्रवेशिका प्रशिक्षण-परीक्षा

नोट:—ध्यान रहे ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं में उक्त परीक्षाओं के अलावा और परीक्षाएँ नहीं ली जावेंगी।

नेमीचंद पाटनी	**पुरनचंद गोदीका**	**पंडित हुकमचंद शास्त्री**
मंत्री	उपाध्यक्ष	संयुक्त मंत्री, श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा-बोर्ड

भ्रम में न पड़ें

प्रान्तीय राज्य की ओर से जनगणना करने के लिये राज्य सरकार के अधिकारी घर-घर में सूचियाँ तैयार करने के लिये पहुँच रहे हैं। जो केवल मकान, काश्तकार, अनुसूचित जाति आदि की गणना के लिए सूचियाँ बना रहे हैं। इस सूची में धर्म का कोई खाना (कालम) नहीं है। जिसके कारण तमाम देश की जैन समाज में बड़ा भ्रम फैल गया है। फरवरी ७० में जनगणना के समय जो सूचियाँ तैयार होंगी, उस फार्म में धर्म का कालम नं० १० है, जिसमें हमें जैन लिखना है।

अपील

हमारी समस्त जैन समाज से अपील है कि वह इस भ्रम में न पड़े। इस समय केवल अपने नाम के साथ जैन ही लिखाने का प्रयत्न करें।

जो जनगणना १० फरवरी सन् १९७१ से प्रारंभ होगी, उस समय जो भी सूचियाँ तैयार होंगी, उन सूचियों में खाना नंबर १० के लिए जो धर्म का कालम है, उसमें केवल जैन ही लिखाना है।

आशा है उपर्युक्त समाधान से यह भ्रम दूर हो जावेगा। यह अपील घर-घर में पहुँचाने में सभी का सहयोग प्रार्थित है।

प्रार्थी—

मंत्री, अ० भा० जैन जनगणना समिति

२०४, दरीबा कलां, दिल्ली

—: भजन :—

(कवि श्री हजारीमलजी कृत)

तूं तो भूलो है पंथ बटोही, न मिलो निजपुर मग तोही।

भव गहन अरण्य भटकेरो, धर मिथ्यामद अंधेरो,
निज-पर सूझत नहीं कोई, न मिलो निजपुर मग तोही ॥१॥

संसार भ्रमण के मांही, जहाँ काम भुजंग रहा ही,
मद-हस्ती को डर होई, न मिलो निजपुर मग तोही ॥२॥

जहाँ राग रींछ भयकारी, की संगति कुमति मांही,
अब क्यों कर बचना होई, न मिलो निजपुर मग तोही ॥३॥

खल क्रोध, मान ठग भारी, चोरे धन ज्ञान गठारी,
तें लक्ष अनंती खाई, न मिलो निजपुर मग तोही ॥४॥

भटकत भये काल अलेखे, धन भाग्यन श्री गुरुदेवे,
जिन आश्रय से सुख होई, न मिलो निजपुर मग तोही ॥५॥

जिनधर्म सु पंथ बतायो, दृग-बोध-चरण दरशायो,
भव्य निरख सु मारग जोई, न मिलो निजपुर मग तोही ॥६॥

जहँ बाट विषें पग धारो, निज अविचल थान सम्हारो,
नित रहत 'हजारी' बोई, न मिलो निजपुर मग तोही ॥७॥

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	'' '' '' भाग-२	१.००
	'' '' '' भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२०	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२७	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२८	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२९	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)